भक्ति के नियम

१. भगवान की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) वा इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		३४६
२. भगवद्भक्ति	[ले० श्री स्वामी भोले बाबा	३५०
३. तपस्या (कविता)	[ले० श्री दामोदर सहाय सिंह जी	३५४
४. भगवद्भक्त प्रह्लाद	[ले० श्री पं० मधुमङ्गल जी 'मिश्र' बी० ए०	३५५
५. शिव शिव रट	[ले० श्री बहिन जयदेवी जी	३५६
६. जय जय मृत्युंजय (कविता)	[ले० श्री जगन्नाथ मिश्र 'कमल'	३६५
७. क्या ईश्वर नहीं है	(ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी	३६५
८. दम व्याख्या	[ले० श्री पं० रेवाधर जी पाण्डेय	३६६
९. मेरा (कविता)	[ले० श्रीमदन गोपाल जी 'सिंहल'	
१०. पुराणगाथा	[ले० श्री	
११. मनो निग्रह		
१२. भजन		

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।~)
३. वेदोपनिषद्	"	~)
४. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	~)।
५. ज्ञानधर्मोपदेश	"	~)॥
६. भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
७. सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	।)
८. सत्य शब्द संग्रह	"	।=)
९. शब्दसंग्रह	"	~)
१०. सारसंग्रह	"	=)
११. भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१२. भगवद्भक्तांक	"	॥~)
१३. भगवदंक	"	॥।)
[illegible]	"	१।)

[illegible] से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

[illegible] ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

महात्मा कबीर साहिब

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ५ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, वैसाख पूर्णिमा सं० १९८८ | अङ्क ८

वेदोपदेश

यत्रानन्दाश्च मोदश्च मुदः प्रमुदः आसते।
कामस्य यत्राप्ता कामस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ १ ॥

हे दयालु आनन्दयुक्त! जिस तुझ में सम्पूर्ण आनन्द और प्रसन्नता स्थित है, जिस में तुझ अभिलाषी पुरुष की सब कामना प्राप्त होती हैं परमैश्वर्य के लिये मुझको मृत्यु से रहित कीजिये और प्रेम वर्षाइये ॥ १ ॥

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किंचन ॥ २ ॥

जहां से सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है उसी को मैं ज्येष्ठ मानता हूं। उसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता है ॥ २ ॥

यतो यतः समीहसे ततो नो भयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ ३ ॥

जहां २ चेष्टा करता है वहाँ वहां हमको अभय करो प्रजा से हमारा कल्याण करो, पशुओं से हमें अभय करो ॥ ३ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ४ ॥

हे जगदीश्वर अन्तरिक्ष, द्युलोक, भूलोक तथा पूर्व पश्चिम, उत्तर, अधर इन्हों से सब को भय शून्य करो ॥ ४ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री स्वामी पूज्य भोले बाबा जी]

नमो देवादिदेवाय परिपूर्ण स्वरूपिणे ॥
सच्चिदानन्दरूपाय निर्गुणाय नमोनमः ॥

महाप्रसादनिष्ठा ।

मंसाराम- महाराज ! महाप्रसाद के विषय में मैं आपके श्रीमुख से सुनना चाहता हूं। कृपया महाप्रसाद का माहात्म्य सुनाइये और इस निष्ठा के भक्तों की कथायें भी सुनाइये।

मस्तराम- हे प्रियदर्शन ! जो अन्न भगवत् को अर्पण करके ईश्वर प्रीति के लिये भोजन किया जाता है, इस अन्न को भक्तितत्ववेत्ता महाप्रसाद कहते हैं। अब मैं तुझे प्रसंग से भोजन करने के नियम बताता हूं। जैसा खावे अन्न, वैसा बने मन, जैसा पीवे पानी, वैसी बोले वानी ! यह प्राचीन कहावत है, इस से सिद्ध होता है कि अन्नजल ही मनुष्य की उन्नति और अवनति का कारण है। अन्न का बना हुआ हमारा स्थूल शरीर है, माता के खाये हुये अन्न जल से बने हुये वीर्य रज से हमारा शरीर उत्पन्न हुआ है और अन्न जल से ही वह जीवित रहता है। जैसा अन्न जल हम खाते पीते हैं, वैसी ही हमारी प्रकृति बनती है, इसलिये श्रेयाभिलाषी को बहुत विचार के साथ भोजन करना चाहिये।

हे सौम्य ! धर्म शास्त्र का वचन है कि प्रातः और मध्याह्न संध्या और देव पूजन किये बिना और दान दिये बिना मनुष्य को भोजन न करना चाहिये। मनुष्य को चाहिये हाथ, पैर धोकर, शुद्ध वस्त्र धारण करके पवित्र निर्जन स्थान में स्वजनों के सहित भोजन करे। आहार शीघ्र तृप्ति करने वाला, बल देने वाला, देह धारण करने वाला और स्मृति, आयु, शक्ति, वर्ण, ओज यानी सामर्थ्य, सत्व यानी

अन्तःकरण की शक्ति और शोभा को बढ़ाने वाला है, यह चिकित्सा शास्त्र का वचन है। हृदय को प्रिय, सद्गुण संपन्न, सुन्दर भोजन भक्षण करना चाहिये। अन्याय भोजन और दोषयुक्त भोजन सर्वथा त्याज्य हैं। (१) देह और मनको हानि करने वाला भोजन, (२) अपवित्र द्रव्य भोजन, (३) अस्वास्थ्यकर द्रव्य भोजन, (४) अकाल भोजन, (५) बिना क्षुधा भोजन करना, (६) अधिक भोजन और (७) स्वल्प भोजन, ये सब अन्याय भोजन हैं।

हे मंसाराम ! एक बार दिन में और एक बार रात्रि में भोजन करना शास्त्र सम्मत है और योगियों के लिये दिन रात्रि में एक बार भोजन करना प्रशस्त है। भूख बिना भोजन करने से निश्चय व्याधि उत्पन्न होती है और भोजन नहीं करने से भी स्वास्थ्य की हानि होती है। वह्नि पुराण में कहा है कि भोजन की इच्छा को रोकने से अंग में पीड़ा, अरुचि, श्रम, तन्द्रा, नेत्रों की दुर्बलता, धातु का दाह, और बल का क्षय होता है। जो भूख लगने पर भी भोजन नहीं करता, तो आहार रूप ईंधन के न मिलने से जैसे ईंधन बिना अग्नि मंद हो जाती है, इसी प्रकार कायाग्नि मंद हो जाती है। जैसे भूमि पर गिरा हुआ जल सूर्य की किरणों से सूख जाता है, इसी प्रकार शरीरस्थ धातुओं को जाठराग्नि सुखाती है, धातुओं के सूख जाने से क्षुधा-पीड़ित मनुष्य न सूंघता है, न सुनता है, न नेत्रों से देखता है, जलता है, कांपता है, मूक, बधिर, जड़, अंधा, पंगु, रौद्र और मर्यादाहीन हो जाता है।

हे मंसाराम ! जाठराग्नि का विचार करके मनुष्य को मिताहारी यानी परिमित भोजी होना चाहिये और रोग उत्पन्न करने वाले और अशुद्ध भोजन को त्यागना चाहिये। मिताहारी का लक्षण शास्त्रकारों ने यह कहा है कि जो सुस्निग्ध और मधुर आहार उदर का चौथा भाग खाली रख कर शिव की प्रीति के लिये भोजन करता है वह मिताहारी कहलाता है। उदर के दो भाग अन्न से और एक भाग जल से पूर्ण करना और चौथा भाग वायु संचार के लिये छोड़ देना, यह भोजन का नियम है।

हे मंसाराम ! गीता में भगवान् की आज्ञा है कि हे अर्जुन ! जो कुछ कर्म करे, जो भोजन करे, जो यज्ञ करे, जो दान देवे, जो तप करे, वह सब मेरे अर्पण कर ऐसा करने से तू शुभ अशुभ कर्मों के बन्ध से छूट जायगा। इस भगवत् वचन के अनुसार जो कुछ खाना, पीना, अथवा नवीन पदार्थ हो वह सब प्रथम भगवत् अर्पण करे और पीछे अपने काम में लावे क्योंकि भक्त का दिया हुआ भगवान् अंगीकार करते हैं, जैसा कि भगवान् ने कहा है कि पत्र, पुष्प, फल, जल जो वस्तु मेरे भक्त भक्ति से मुझ को निवेदन करते हैं, इस का मैं प्रसन्न होकर भोग लगाता हूं। हे मंसाराम भगवत् प्रसाद के भोजन से और शास्त्रोक्त कर्म भगवत् के निमित्त करने से बहुत ही शीघ्र अन्तःकरण निर्मल होकर भगवच्चरणों में प्रीति हो जाती है। पुराणों में कहा है कि हजार एकादशी और सौ द्वादशी का फल भगवत्प्रसाद के एक कण के सौवें अंश के माहात्म्य के बराबर नहीं है। गरुड़पुराण में भगवत् की आज्ञा है कि जो लोग भगवत्प्रसाद का भोजन करते हैं, उनके मन के सब रोग नष्ट होजाते हैं और मन पवित्र हो जाता है। और भी भगवत् का वचन है कि जो लोग खाने पीने की कोई सामग्री मेरा प्रसाद

मान कर खाते पीते हैं, वे मुक्त को प्राप्त होते हैं। भगवत् की आज्ञा है कि जो लोग भगवत् को बिना भोग लगाये खाते पीते हैं, उनका भक्ष्य शूकर के भक्ष्य सदृश और जल रुधिर के सदृश है। यह ही बात विष्णु पुराण में भी कही है।

हे मंसाराम! विचारने की बात है कि भगवत् के अर्पण करने से वस्तु तो घटती है नहीं, इतना ही करना होता है कि जब भोजन करने को बैठे तो भगवत् का ध्यान करके रसोई भगवत् अर्पण कर दी और यह निश्चय कर लिया कि भगवत् ने भोग लगा लिया। पीछे भोजन कर लिया। ऐसा करने से घाटा तो कुछ पड़ता नहीं फल अनन्त हो जाता है। वह ही कहावत होती है कि 'हर्र लगे, न फिटकरी और रंग झकाझक आय!' हे मंसाराम! इसी प्रकार जो कोई नई सामग्री बनाई जाय, वह भगवत् अर्पण कर के पीछे अपने उपयोग में लेनी चाहिये। यदि भगवन्मूर्ति न हो, तो न सही, ध्यान से ही भगवत् को अर्पण करके पीछे वस्तु अपने काम में लावे। यदि कभी ऐसा संयोग आन पड़े कि रसोई की सामग्री पहिले किसी ने खाली हो, तो ऐसा समझना चाहिये कि भोजन भगवत् अर्पण हो चुका है, मन न बिगाड़े, जो कुछ शेष रहा हो, उस को भगवत् का ध्यान करके भोग लगा ले। भोजन से प्रथम भगवत् का ध्यान अवश्य कर लेना चाहिये क्योंकि बिना भोग लगाये भगवत्प्रसाद नहीं हो सकता भाव यह है कि भगवत् को न अर्पण की हुई वस्तु त्याज्य है और महा हला, हल विष के समान है वरु विष से भी अधिक है क्योंकि विष खाने से तो प्राणी एक बार ही मरता है और इस विष के खाने से चौरासी लाख बार मरना पड़ता है।

मंसाराम-महाराज! सैंकड़ों, हजारों मनुष्य देखने में आते हैं कि ठाकुर द्वारों में भगवत्प्रसाद खाते हैं और चरणामृत पीते हैं और बहुत से मनुष्य शालिग्राम की मूर्ति सर्वदा अपने पास रखते हैं और बिना भोग लगाये कुछ कभी नहीं खाते परन्तु हृदय की निर्मलता और भगवत् की प्राप्ति इनमें से किसी विरले को ही होती है, इसका क्या कारण है, इस मेरी शंका का समाधान कीजिये।

मस्तराम- भाई! इसमें श्रद्धा और विश्वास कारण है। जैसे २ श्रद्धा विश्वास की वृद्धि होगी, तैसे २ हृदय निर्मल होता जायगा और अंत में भगवत्प्राप्ति हो जायगी। जैसे पारस मणि और लोहे के बीच में जब तक बाल बराबर भी अन्तर रहेगा तब तक लोहा सोना नहीं होगा और जब वे दोनों एकत्र हो जायेंगे, तो थोड़ी ही देर में पारस से रगड़ खाने से लोहे का रंग उड़जायगा और वह निश्चय सुवर्ण हो जायगा! यह बात भी भूलनी न चाहिये कि भगवत्प्रसाद भोजन करने वाला और चरणामृत पीने वाला दृढ़ विश्वास युक्त न भी हो, तो भी वह यमयातना और नरक का दुःख नहीं भोगेगा।

हे मंसाराम! महाप्रसाद और भगवच्चरणामृत की महिमा अकथनीय है, कोई वर्णन नहीं कर सकता। भगवद्भक्तों के चरणामृत और झूँठन का यह प्रताप है कि उनके प्रताप से हजारों परम पातकी और अधम शुद्ध होकर भगवत् निकटवासी होगये हैं। इस में नारदजी और भक्तमाल के कर्ता नाभाजी की कथा प्रमाण है। सिवाय इसके द्रौपदी और अम्बरीष आदि की कथाओं से अपने महा

प्रसाद और चरणामृत की महिमा भगवान् स्वयं प्रकट करते हैं। दुर्वासा जी ने चरणामृत के लेने के अपराध से अम्बरीष को दुःख दिया, तो उनकी क्या गति हुई, यह बात पूर्व में कह आया हूं। द्रौपदी की कथा आगे वर्णन करूंगा, संक्षेप से कहता हूं। वनवास के समय राजा युधिष्ठिर को सूर्य ने एक टोकनी दी थी। उस टोकनी का यह गुण था कि जब तक द्रौपदी भोजन न करती तब तक जितना चाहो, उतना भोजन इस में से निकलता चला आता था। एक दिन द्रौपदी के भोजन कर लेने के पीछे दश हजार शिष्यों सहित दुर्वासा जी आये। उन्हें देख कर राजा चिंता में पड़ गया इतने ही में श्रीकृष्ण महाराज आगये और टोकनी में से एक शाक का पत्ता ढूंढ कर खागये। फल इसका यह हुआ कि दुर्वासा अपने दश हजार शिष्यों सहित ऐसे अघा गये कि परीक्षा लिये बिना ही भाग खड़े हुये। हे मंसाराम! विचारना चाहिये कि क्या भगवान् बिना शाक का पत्ता खाये हुये दुर्वासा जी को तृप्त नहीं कर सकते थे? अवश्य कर सकते थे! हठ करके शाक खाने से भगवान् ने अपने महाप्रसाद का माहात्म्य दिखाया है कि मुझे अर्पण किया हुआ मेरे समान अनन्त हो जाता है और इस से करोड़ों की तृप्ति हो सकती है।

हे मंसाराम! द्रौपदी ने पूर्व जन्म में एक ऋषीश्वर को थोड़ा सा कपड़ा भगवत् की प्रीति के लिये दिया था, वह कपड़ा ऐसा अनन्त हो गया कि दश गज के बल वाला दुःशासन खैंचते २ हार गया, दश जग कपड़ा कम न हुआ! जैसे एक बिन्दु भी सिंधु में डालने से सिंधु ही हो जाता है इसी प्रकार जो पदार्थ अनन्त को अर्पण किया जाता है, अनन्त हो जाता है। जो पदार्थ अनन्त हो गया, उस के खाने पीने से हृदय निर्मल क्यों न होगा! होवेगा ही! विस्तार से समझाता हूं, पवित्र वस्तु अशुद्ध वस्तु को भी शुद्ध कर देती है, यह बात जल और अग्नि के दृष्टांत से भली प्रकार सिद्ध है, इसी प्रकार जो भोजन और जल जिस समय परम पावन भगवत् को अर्पण किया जाता है, वह उसी समय शुद्ध और परम पावन होजाता है। उस शुद्ध और पावन जल को जब भक्त सेवन करता है, तो भक्त भी शुद्ध और अनन्त विमल होजाता है।

हे मंसाराम! विश्वास मुख्य है। प्रसिद्ध है कि सन्त महात्मा राह चलते २ शरीर से शरीर अथवा दृष्टि से दृष्टि मिलाकर पापी और अपावन पुरुषों को एक क्षण में अपने समान निर्मम और पापों से मुक्त कर देते हैं। कारण इसका यह ही है कि सन्त महात्मा पावन निर्मल होते हैं, वे अपनी निर्मलता से दूसरों के हृदय का मल क्षण मात्र में दूर कर देते हैं। तात्पर्य यह है कि भगवत् के अर्पण किये बिना कोई वस्तु अपने उपयोग में न लावे। यह भी कह आया हूं कि इस में कुछ क्लेश भी नहीं है, मात्र एक बात है, केवल मन में ध्यान कर लेना है। फिर भी न मालूम हम लोगों को दुर्भाग्यता है, या कलियुग का प्रताप है कि थोड़ी सी बात भी हठ से नहीं हो सकती। एक मनुष्य का हृदय जब सत्संग करने से कुछ निर्मल हुआ, तो वह अपनी दुर्दशा देख कर इस प्रकार पश्चात्ताप करने लगाः-

शोक! महाशोक! इस भाग्यहीन मन ने मुझे बहुत ही भटकाया! इसी दुष्टि के कारण मैं इस दुर्दशा को प्राप्त हुआ हूं। न जाने कब से भांति२

के करोड़ों जन्म ले कर अनेक प्रकार की पीड़ा में फंसा हुआ हूं परन्तु अब मेरा भी अच्छा दौर लगा है कि श्रीकृष्ण स्वामी के चरण कमलों की छांह मिल गयी है, देखूंगा कि इस दुष्ट मन का बल चलता है कि मेरे स्वामी, पतितपावन, दीन वत्सल के विरद का बल चलता है। रे मन! तेरे बुरे आचरणों पर दृष्टि करता हूं, तो तू कदापि इस योग्य नहीं है कि तेरी भलाई के लिये परिश्रम किया जाय परन्तु सर्वदा मेरे पास रहता है, इस लिये तुझे शिक्षा देता हूं कि तू इस रूप अनूप का चिन्तन किया कर!

विदुरजी का सुहावना मन्दिर है, मन्दिर में सिवाय भगवान और विदुर पत्नी के दूसरा कोई नहीं है। भक्त वत्सल भगवान् एक चौकी पर विराजमान हैं। श्याम घन शरीर है, विद्युत् से दर्शन हैं, मंद २ मुसकान है। घूंघर वाले केश हैं, कमल से लोचन विशाल हैं, वनमाला धारण किये हुये हैं, कोटि सूर्य समान शरीर की कान्ति है, कोटिचन्द्र सम शरीर में शीतलता है। कोटि कामदेव समान भगवान की छवि है, ऐसी मोहिनी छवि को देखकर विदुर पत्नी! प्रेम में भोर हो गयी हैं, शरीर की और शरीर के वस्त्रों की भी सुधि भूल गयी हैं। भगवान को केले खिलाने को लाई हैं परन्तु प्रेम में इतनी चूर हैं कि केले का गूदा फेंकती जाती है और केले के छिलके भगवान के हाथ में देती जाती हैं! भगवान् भी केले के भूखे नहीं हैं। भाव के भूखे हैं, छिलके ही लेते जाते हैं और बड़े प्रेम से केलों के स्वाद की अपूर्वता वर्णन करते हुये छिलकों का भोग लगा रहे हैं, कहते हैं कि हे बड़भागी! ऐसा स्वाद तो यशोदा के मक्खन और दही में भी नहीं था, जो अपूर्व स्वाद इन केलों में है! विदुर पत्नी तनु में फूली नहीं समाती, अपनी सेवा से भगवान् को प्रसन्न हुआ जान कर अपने भाग्य को सराहना कर रही है, यह खबर नहीं है कि मैं कर क्या रही हूं! ऐसे भक्त वत्सल भगवान् के चरणों से विमुख होने वालों का दुर्भाग्य है और जो भगवान के चरणों की शरण लेते हैं, उनका जन्म ही इस संसार में सफल है।

तपस्या

[ले० श्री दामोदरसहाय सिंह जी]

(१)

समझना आदमी की देह को रथ।
जुते हैं जिसमें इन्द्रिय रूप घोड़े॥

(२)

बना मन सारथी चंचल प्रकृति का।
चढ़ा है आतमा उस रथ के ऊपर॥

(३)

बनी है बुद्धि मंत्री आतमा का।
सभी हुक्मों को मन के पास लाती॥

(४)

सड़क ऐसी बनायी है कि जिसकी।
दिखाई दे रहे दोनों किनारे—

(५)

बहुत दिल खींचने वाली जो चीजें।
अनोखी झाड़ियां चट्टान गड्ढे॥

(६)

उन्हीं के देखने से मन बहुत बार।
लगाता भागने को है मोह अपार॥

(७)

नतीजा इसका होता यह बुरा है।
कि मन दागों को ढीली छोड़ करके–

(८)

नहीं घोड़ों को जी से हांकता है।
औ रथ की खड़खड़ाहट से नहीं कुछ–

(९)

सुनाई बुद्धि का पड़ता चेताना।
बहुत तकलीफ़ ऊपर चढ़ने में है॥

(१०)

इसी से घोड़े नीचे की तरफ़ हो–
उतरने लगते हैं तब तब बिगड़ कर॥

(११)

हैं लगते दौड़ने सीधी तरफ़ वे।
बिगड़ जाते हैं जिससे रथ के पुर्ज़े॥

(१२)

नियम से साधे– घोड़ों को वश में।
हमेशा रस्ते के ऊपर रथ चलाना॥

(१३)

समय पड़ने पै तेजी से या धीमा।
ज़रूरत के मुताबिक रथ रखाना॥

(१४)

कभी जब रथ का पुर्ज़ा कोई कुछ भी।
बिगड़ जावे मरम्मत करना चटपट॥

(१५)

न दिल करना चीज़ों पर देना कभी ध्यान।
बड़ी हिम्मत से कर के दिल को पक्का॥

(१६)

सभी कठिनाइयों के साथ भिड़ना।
दबाना उसको अपनी राह लेना॥

(१७)

जड़ औ चेतन की सुलझाना समझना।
इसी में कहते हैं पंडित "तपस्या"॥

भगवद्भक्त प्रह्लाद

[ले॰ श्री पं॰ मधुमंगल जी मिश्र बी॰ ए॰]

जय और विजय के शाप की कथा प्रसिद्ध है बलवान् के समक्ष तनिक भी अपराध भारी हो जाता है या कम से कम भारी समझा जाता है। जय और विजय ने अनजानते में कुमार बन्धुओं को भगवान् के पास जाने से रोका था। बस इतने ही में पारा गरम हो गया। बोले:–

'युवां वासं न चार्हथः।
रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः"॥

अर्थात् तुम दोनों सतोगुणी मधुसूदन के चरण कमल में निवास पाने योग्य नहीं हो। बड़े हैं, चाहे जो कहें। उधर तो भगवान् को रज और तम-गुण रहित कहा और इधर भगवान् का नाम मधुके द्वेषी कहा। अच्छा सतोगुणी नाम कह डाला। फिर देखते हैं इस तनिक से अपराध पर उन दोनों को तीन जन्म आसुरी योनि का शाप दे उनके तीनों जन्म द्वारा कितने ब्राह्मण ऋषि मुनि सुर सन्तों को पीड़ा पहुंची है।

और करै अपराध को और पाव फल भोग।
अति विचित्र भगवंत गति को जग जानै जोग॥

यदि मान लिया जावे कि जय और विजय से अपराध बन ही पड़ा तो शाप द्वारा इन

साधुसन्तों की सासत और यातना बिना कौन हानि थी। जय विजय को भगवच्चरण से काला पानी कर देते इतना बस न था?

ऐसे ही कंस जब देवकी को विदा कर रहा था, तब आकाशवाणी द्वारा अष्टम गर्भ से संहार सुना कर और नारद की गिनती गिनाने की रीति पाल कर आठों नवजात शिशुओं की हत्या से क्या सिद्धि हुई? वसुदेव ने देवकी की बचा के एक देवकी के स्थान पर आठ बच्चों की हत्या कराई या हत्या के कारण हुए। कृष्ण के पलटे में लाई गई कन्या ने कंस द्वारा पटके जाने पर अष्टमहाभुजधारी देवी के रूप में प्रकट होकरः-

"किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत"

अर्थात् "हे मन्द! मेरे मारने से क्या लाभ हुआ तेरा नाशकर्ता तो जन्म पा चुका" ऐसा कह देने पर कितने बालकों का वध कंस की आज्ञा से निष्पन्न हुआ। सोचने पर इन सबके कारण विद्वान् पण्डितों से विदित होंगे। पर जब अपनी बुद्धि में कारण नहीं आता तब यों कहते बनता है:-

दयानिधि तेरी गति लखि न परै।
धन से धरम धरम से अधरम अकरम करम करै।
पिता बचन टरै जो पापी सो प्रह्लाद करै॥
ताकी बन्दि छुड़ावन को प्रभु नरसिंह रूप धरै।
एक गऊ जो देत विप्र को सो भवलोक तरै।
कोटि गऊ राजा नृग दीन्हीं सो भव कूप परै॥
गुरु वशिष्ठ जो सब गुण आगर रचिरचि लगन धरै।
सीता हरण मरण दशरथ को विपति में विपत परै॥
स्वर्ग लोक के लालच राजा बलि नित यज्ञ करै।
ताको बाँधि पताल पठायो कैसे सूर तरै॥

फिर भगवद्भक्त के लिये मर्यादा उल्लङ्घन भी है।

जिनके प्रिय न राम वैदेही।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।
तजे पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी॥
बलि गुरु तजे, कंत ब्रज बनितन भे जग मंगलकारी।
नाते नेह राम सों मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लों॥
अञ्जन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतेक कहौं कहां लों।
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्राणतें प्यारो।
जातें होइ सनेह राम पद एतो मतो हमारो॥

महात्मा सूर और तुलसी ने ऊपर के पद्यों में जिन प्रह्लाद का उल्लेख किया है वे जय विजय के प्रथम जन्म के हिरण्याक्ष के भ्राता हिरण्यकश्यपु के पुत्र थे। जब कनक कशिपु तपस्या को गया था तब इन्द्र उसके परिवार को हँकाले लिये जाते थे कि बच्चा होते ही मार डाला जावे। पर नारद जी ने बीच में पड़कर मरते बच्चे ही को नहीं बचाया बल्कि अपने आश्रम में गर्भिणी माता को आश्रय देकर ऐसा सदुपदेश सुनाया जो राक्षसी माता को तो भूल गयो पर गर्भ गत बालक प्रह्लाद के मनमें बैठ गया। सोना तपाने पर चमकता है, मणि की आभा सान पर चढ़ाये जाने पर छिटकती है, विद्वान् की बुद्धि का विकाश परीक्षा लेने पर प्रकट होता है, सन्तों की महिमा सङ्कट प्राप्त होने पर भी विचलित न होने में जगमगाती है। गर्भ गत बालक के हृदय पर सदुपदेश का प्रभाव ऐसा पक्का जमा कि कठिन से कठिन परीक्षा में भी न डिगा। पिता की बुद्धि को तो न पलट सका पर सहपाठी बालकों (राक्षस बालकों) की बुद्धि पर उसका प्रभाव भलीभांति प्रकट हुआ। श्वेत वस्त्र पर, नई बुद्धि पर, जो रंग चढ़ाया जावे चढ़ जाता है। एकबार मति फिर जाने पर दूसरा रंग चढ़ाना कठिन होता है। इसी

से कहते हैं:–

तजो रे मन हरि विमुखन को संग,
जाके संग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग ।
कहा होत पय पान कराये विष नहिं तजत भुजङ्ग ॥
कागहिं कहा कपूर चुगाये स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अङ्ग ॥
गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरै कहि अङ्ग ।
पाहन पतित बाण नहिं भेदत रीतो करत निषङ्ग ॥
सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रङ्ग ॥

शिक्षा तथा ससार का उपयुक्त काल नई वय ही है। बढ़ने पर उपाय सफल नहीं होते।

यथामयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभि-
र्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुं ।
यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा,
रिपुर्महान्बद्ध बलो न चाल्यते ॥

रोग को पहिले उपेक्षा की जावे तो बढ़ने पर उसकी चिकित्सा नहीं हो सकती। वैसे ही इन्द्रियों का संवरण प्रारम्भ में न हो तो उनका पीछे दमन संभव नहीं वैसे ही शत्रु बल पकड़ने पर हटाया नहीं जा सकता ॥

तपस्या के बल पर और ब्रह्मा के वरदान से हिरण्यकश्यपु बड़ा प्रबल और उद्दण्ड शासक हुआ। उसके शासन काल में सप्तद्वीपवती पृथ्वी अकृष्टपच्या थी अर्थात् बिना जोते उपज देती थी, समुद्र लहरों द्वारा तट पर रत्न फैंक देते थे। वृक्षादि बारहों महीने समभाव से फूलते फलते थे। इसप्रकार उसने देवता, मनुष्य, पृथ्वी, समुद्रादि पर तो विजय प्राप्ति की पर अपनी इन्द्रियों पर वह विजय प्राप्त न कर सका। लोगों ने विकल हो भगवान् की शरण ली। वे बोले हमें सब ज्ञात है, सब बातें समय से होती हैं। काल की प्रतीक्षा करो जब अपने पुत्र प्रह्लाद से द्रोह करेगा तब मैं उसे मारूंगा: वर पाने का अभिमान भी समझ लूंगा।

निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने ।
प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥

प्रह्लाद विद्वान, रूपवान होकर भी अभिमान शून्य थे। विपत्तिकाल में घबड़ाते न थे, विषयों में लालसा न थी। क्योंकि सांसारिक पदार्थों को वे सार रहित समझते थे। इन्द्रिय, प्राण और शरीर उनके वश में थे, वे सर्वदा शान्त रहते थे। प्रह्लाद का चित्त भगवच्चिन्तन में सर्वदा निरत रहता था, कभी २ तो ध्यान में मग्न होने पर जड़वत् ज्ञात पड़ते थे। भगवान् का ध्यान करते २ कभी २ रो उठते, कभी हंसते, कभी गाते कभी चुपचाप आंसू बहाते थे। असुर वंश में जन्म पाकर और बुरे संसर्गों में रह कर भी वे भगवत्स्मरण द्वारा आत्मोन्नति साधन परायण थे। यह सब नारद के उपदेश का प्रभाव था। ऐसे साधु पुत्र पर पिताने अत्याचार किया। कारण यह था। एक दिन शाला में आकर पूछा बच्चा तुम किसे श्रेष्ठ समझते हो? प्रह्लाद बोले:–

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां ।
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ॥
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं ।
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥

अर्थात् हे असुरश्रेष्ठ! गृहस्थों की बुद्धि अपना पराया की मिथ्या कल्पनाओं में सदा डांवाडोल रहती है। अतः अन्धकूप रूपी घर को छोड़ वन में जाकर भगवान् का आश्रयण करना चाहिये।

प्रह्लाद का यह कहना जलते घी में पानी का काम कर गया। हिरण्यकश्यपु बहुत तड़फा, मेरे भाई के हत्यारे की दासता करेगा ? गुरु को फटकारा। क्या उलटी शिक्षा दे रक्खी है ? सब को सावधान कर उस दिन तो डांट डपटद्वारा छुट्टी हुई। फिर एक दिन वही प्रसङ्ग अड़ा। शाला में प्रह्लाद से कहा जो कुछ उत्तम बात सीखी हो सो सुनाओ तो। प्रह्लाद बोले:-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव लक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥

अर्थात् भगवान् में नवधा भक्ति ही श्रेष्ठ अध्ययन है। यह सुन कर हिरण्यकश्यपु के ओष्ठ कांपने लगे। पूछा सूर्ख! यह कहांसे सीखा? वे बोले! इन्द्रियों के भोगमें लिप्त संसारासक्त लोगों का मन भगवान्में नहीं लगता। जैसे अन्धा दूसरे को मार्ग नहीं दिखा सकता वैसेही विषयासक्त उपदेशक की शिक्षासे कोई भगवान् को नहीं जान सकता। साधु के उपदेश विना भगवत्सेवा नहीं बन पड़ती। और भगवच्चरणार्चन विना कष्टमय संसार की विषयवासनाएं दूर नहीं होतीं॥

यथा भ्रमत्ययो तात स्वयमाकर्षसन्निधौ।
तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया॥

अर्थात् जैसे चुम्बक से लोहा खिंच जाता है वैसे ही मेरा चित्त चक्रपाणि की ओर अपने आप खिंचा जाता है। इस उत्तर से क्रोध में अन्धे हो हिरण्यकश्यपु ने उसे गोद से उठा पटका और कहा।

परोऽपि पथ्यं हितकृद्यथौषधं
स्वदेहजोऽप्यामयवत्समुत्थितः॥
छिन्द्यात्तदङ्गं यदुतात्मनोऽहित,
शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात्॥

अर्थात् देह से उत्पन्न रोग हानि करता है, पराये स्थान में उत्पन्न औषधि हित करती है, रोग के समान पुत्र भी अहित हो तो वह त्याज्य है। तब तो उसने दूतों को बुलवा कर प्रह्लाद को पिटवाया, भालों से छिदवाया, शूल से कोंचवाया. हाथी से कुचलवाया; पर्वत पर से गिरवाया, बिच्छू, सर्प, गोजर से कटवाया, ठण्डे, गरम जल और वायु से शीतलता वा उष्णता पहुंचवाई, विष खिलवाया। बहिन की गोद में बैठा के आग में जलवाया पर कुछ न कर पाया। तब तो बड़ा घबड़ाया गुरु के कहने से वरुण पाश में बन्धवाया और चला गया। जब गुरु जी कहीं हटे तब प्रह्लाद ने लड़कों के बीच में पहुंच कर यों शिक्षा देना प्रारम्भ किया:-

"हे बालको! जैसे कीट सूत निकाल कर अपने आप को बांध लेता है वैसे ही विषयासक्त मनुष्य अपने को ऐसा बन्धन में डाल लेता है कि छुट नहीं सकता। यह मेरा है यह पराया है इसी भावना में उसका दिन बीतता है। हे भैया! तुम सब प्राणियों पर दया प्रकट करो तो भगवान् तुम पर प्रसन्न होंगे। फिर तुम्हें कुछ अभाव न रहेगा मनुष्य जन्म दुर्लभ है जो भगवान् के भक्त हैं वे साधारण और दरिद्र होने पर भी ज्ञान के अधिकारी हैं।" आचार्य ने लौट कर प्रह्लाद की शिक्षा का प्रभाव देख भयभीत हो हिरण्यकश्यपु को सब वृत्त सुनाया। वह खड्ग लेकर पद से कुचले सर्प के

समान दीक्षा और पूछा तूने किस के भरोसे मेरी आज्ञा उल्लङ्घन की। उसने कहा "पिताजी भगवान् ही मेरे बल हैं। वे ही आपके और सब के बल हैं, जिस चित्त को वश में न किया जावे वह अपना शत्रु है।" असुरेश्वर ने कहा तू ने जो मेरे अतिरिक्त ईश्वर बतलाया वह कहां है। प्रह्लाद बोले वे सर्वत्र हैं। उसने पूछा तो इस खम्भे में क्यों नहीं दीखते? प्रह्लाद जी ने स्तुति कर कहा देखिये वे खम्भें में भी विराजमान हैं।' दैत्यराज ने कुछ न देख कहा तू झूठी है। तेरा शिर छेदता हूं। अब नारायण तेरी रक्षा करेंगा। ऐसा कह खम्भे पर खड्ग प्रहार किया। खड्ग प्रहार के साथ भयानक शब्द हुआ। खम्भा टूटा और उसमें से भगवान् नृसिंह रूपधारी प्रकट हुए। वह चका पका ही रहा था कि भगवान् ने उसे पकड़ के पैरों पर रख नखों से विदीर्ण कर डाला। वहां देवता गण आये स्तुति करने लगे। बोलने का साहस किसी का न हुआ। लक्ष्मी जी को भेजना चाहा। वे भी भयानक रूप देख सहम गई। तब लोगों ने प्रह्लाद को भेजा। प्रह्लाद ने स्तुति की। नृसिंह भगवान् ने प्रसन्न हो पीठ पर हाथ फेरा और बोले तुम मनमाना वर मांगो। मैं कामना पूरक हूं। प्रह्लाद बोले। भगवन! मुझे कुछ न चाहिये। आप मुझे ललचाइये मत। जो आपसे कुछ चाहता है वह आपका दास नहीं है लेन देन करने वाला बनिया होगा। हम आपके निष्काम भक्त हैं, हमने कुछ पाने की आशा से भक्ति नहीं की है, हमें आप प्रिय लगते हैं। यदि आप दया कर मुझे वर देते ही हैं तो मुझे यही वर दीजिये कि मेरे हृदय में कामनाओं का उदय ही न हो, भगवन् कामनाओं के नाश होने ही पर तो प्राणी आपकी शरण में उपस्थित होने योग्य होता है।

भगवान् नृसिंह बोले। तुम से एकान्त भक्त इहलोक वा परलोक में सुख की अभिलाषा नहीं रखते तथापि हम तुम्हें इस मन्वन्तर भर दैत्यराज का पद भोग करने की आज्ञा देते हैं। तुम निरन्तर मेरी प्रिय कथाएँ सुना करो और निष्काम हो योग यज्ञादि करो। तुम्हारी कीर्ति का गुणगान देवलोक में होगा। पुण्याचरण द्वारा संसार बन्धन से मुक्त हो कालक्रम से शरीर छोड़कर मुझ को निश्चय प्राप्त होंगे। प्रह्लाद जी बोले मैं एक वर मांगूंगा। अज्ञान के तथा क्रोध के कारण पिता जी ने जो मुझे यातनाएं दीं और आपकी निन्दा की उसे दीनानाथ! क्षमा कीजिये। भगवान् ने २० पीढ़ी तक वंश को पवित्र कर दिया।

प्रह्लाद ने भगवान् से अपने लिये कुछ न मांगा। मांगने वाले को भगवान् मांगी वस्तु देते हैं, मोक्ष नहीं देते। क्योंकि सम्भव है और कुछ मांगने की इच्छा शेष हो। पर अकाम भक्तों को भगवान् मोक्षदायिनी भक्ति देते हैं।

शिव शिव रट

[ले० श्री बहिन जयदेवी जी]

हेरी बहिन जिह्वा! बैठो २ क्या कर रही है? खाली बैठना अच्छा नहीं होता! खाली बैठे रहने

से मन इधर उधर भटकता है मन अशान्त रहता है, काम करने वाले का मन एकाग्र रहता है, एकाग्र मन शान्ति पाता है, इसलिये विद्वानों का कथन है कि कुछ न कुछ कार्य करते ही रहना चाहिये। शिष्ट पुरुषों का यह भी वचन है कि निरुद्यमी मनुष्य मरे हुये के समान है। फिर तुझे चुपके क्यों बैठना चाहिये? बहिन! अपना कर्तव्य कर, जो अपना कर्तव्य नहीं करता, सर्वतो भ्रष्ट होता है और जो अपना कर्तव्य मन लगा कर करता है, उस का निश्चय कल्याण होता है, वह अवश्य सुखी होता है। जो ब्राह्मण त्रिकाल संध्या स्नान नहीं करता, पतित होता है, जो राजा प्रजा पालन में आलस्य करता है, राज्यपद से भ्रष्ट होता है, जो वैश्य धन कमाने में कसर करता है, उस का निरादर होता है, जो शूद्र मेहनत, मजदूरी, सेवा चाकरी नहीं करता, कष्ट पाता है। जो ब्रह्मचारी स्वाध्याय में प्रमाद करता है, उसे जवानी में पछताना पड़ता है, जो गृहस्थ अतिथिपूजन पंच महायज्ञ नहीं करता, नरकगामी होता है। जो वानप्रस्थ तप नहीं करता, विषयभोग में फंस जाता है, उसकी दुर्दशा होती है, और जो संन्यासी संग्रह करता है, विरक्त नहीं रहता, वह कल्याण पथ से गिर जाता है! जो सधवा बहिन पतिव्रत का पालन नहीं करती, लोक में अपयश और परलोक में दुर्गति प्राप्त करती है और जो विधवा बहिन जितेन्द्रिय होकर ईश्वर भजन में नहीं लगती किंतु वस्त्राभूषणों से अपने को सजाती है, वह यमराज के लोक में जाकर महा कष्ट भोगती है और यहाँ भी शिष्ट पुरुष उसकी निन्दा करते हैं। इस प्रकार कर्तव्य भ्रष्ट नारी नर यहां वहां कहीं भी सुख नहीं पाते किंतु दुःख ही उठाते हैं! बहिन! ईश्वर ने तुझे भजन करने के लिये बनाया है, इसलिये भजन कर, शिव, शिव, शिव रट!

हे बहिन! कोई तेरी बहिन ॐकार का उच्चारण कर रही है, कोई राम २ पुकार रही है, कोई कृष्ण २ उच्चार रही है, कोई नारायण २ की धुन लगा रहा है, कोई दिनेश २ कह रही है, कोई गणेश २ जप रही है, कोई शंकर २ स्मरण कर रही है, कोई देवी का, कोई भवानी का, कोई शारदा, का, कोई गंगा का कोई, जमुना का, कोई गौमाताका, कोई गायत्री का, कोई सावित्री का और कोई धात्री का जप कर रही है! को अर्हन २ चिल्ला रही है कोई जिन २ गा रही है! कोई अल्लाह २ पुकार रही है, कोई बबाजी २ उच्चार रही है, कोई रहीम२ कोई करीम २ बोल रही है। और कोई हक्क २ रट रही है कोई ईसा २, कोई मूसा २, कोई गौड २ (God) २ कोई राइट २ (Right)२ कह रही है! गौ की हुंकार में से ॐ निकल रहा है, सर्प की फुंकार में से क्लीं सुनाई दे रहा है, घोड़े की हिन हिनाहट में से ह्रीं का शब्द आ रहा है, मोर के स्वर में से श्रीं सुनाई दे रहा है! वृक्षों की संसनी में हरिहर बोल रहे हैं, पर्वतों में से भगवन्नाम की गूज आरही है और नदियों में से बंबं करती हुई लहरें उछल रहीं हैं! हे बहिन! भगवान् के सभी नाम हैं, जिसको जो नाम प्यारा लगता है, वह इसी नाम से विश्वेश को पुकार रहे हैं, क्यों चुपकी बैठी है! क्या तुझे जगदीश के नाम लेने में रस नहीं आता? अरी! षट् रस भूल जायगी, सब मिठाइयां सीठी हो जांयगी, अद्भुत् स्वाद पायेगी, मिश्री फीकी हो जायगी, मक्खन रूखा हो जायगा, घी

सूखा हो जायगा, दूध पानी जचने लगेगा और तो क्या कहूं अमृत को भी भूल जायगी, परमामृत पायेगी, अजर अमर हो जायेगी । शिव, शिव, शिव, रट !

शंका– अजर अमर कैसे हो जाऊंगी ! किसी का स्वभाव थोड़ा ही बदलता है ! अग्नि शीतल नहीं हो सका, बर्फ उष्ण नहीं हो सका, पृथिवी निर्गन्ध नहीं हो सकी ! फिर मैं हाडमाँस की अजर अमर कैसे हो सकी हूं ? अरे ! भूल गयी, हाड़ भी मुझ में कहां है ? माँस का ही तो लोथड़ा हूं ! हाड मेरे शत्रु हैं, बत्तीस हाड़ों के बीच में रहती हूं, जैसे बहू सास सुसर से दब कर रहती है अथवा जैसे चूहा बिल्ली से दबा हुआ रहता है अथवा जैसे सर्प नौले से डरता हुआ रहता है इसी प्रकार शत्रुओं के बीच में रहना पड़ता है, फिर जरा अधिक चलती हूं, तो तुरत ही दांत कच कर लेते हैं, रक्त बहने लगता है ! ईश्वर ने एक बात अच्छी की है कि मुख की भाप से ही रक्त बहना बन्द हो जाता है, ऐसा न होता, तो मैरा मुख में रहना ही कठिन हो जाता, कठिन क्या असंभव ही हो जाता, फिर मैं अजर अमर कैसे हो सकी हूं ?

समाधान– बहिन ! दांत तेरे शत्रु थोड़ा ही हैं, ये तो तेरे मित्र हैं ! भोजनमें तुझे जो स्वाद आता है, उन्हीं का अनुग्रह है ! लोक में कहावत है कि जब तक चक्की चलती रहती है तभी तक स्वाद आता है। यह बात ठीक ही है, पोपले मनुष्यों को इस बात का अनुभव है। बिचारे पेट तो भरते ही हैं परन्तु स्वाद तो दांतों के साथ चला जाता है। शत्रुता करने में तू क्या कुछ कम है ? एक खोटी बात कह देती है। तो कोई बलवान् पुरुष बत्तीसी झाड़ देता है। शिष्ट पुरुष किसी को शत्रु नहीं मानते किंतु सब को मित्र मानते हैं, वस्तुतः कोई शत्रु है भी नहीं, 'आप भला तो जग भला,' यह कहावत प्रसिद्ध है। दांतों का चबाया हुआ शीघ्र पच जाता है और उस का रस बन जाता है, इस रस से ही तेरा पालन पोषण होता है, पर उनको शत्रु कहना तेरी कृतघ्नता है दांतों को हित कर मान कर सर्वदा मीठा बोला कर जिससे उन बिचारों पर कोई आपत्ति न आवे, फिर वे भी तुझे नाना प्रकार के स्वाद चखने में सहायता देंगे ! अजर अमर कैसे हो जायगी, यह पं.छे बताऊंगा, अभी तो मेरे कथन पर विश्वास करके प्रेम पूरंक आदर सहित शिव, शिव, शिव, रट !

शंका– तोते की तरह रटने से क्या लाभ ?

समाधान– बहिन ! जैसे जाने अथवा बिना जाने भी खाने से औषधि अपना गुण करती ही है, इसी प्रकार बिना जाने भी जपा हुआ ईश्वर का नाम अवश्य फल देता है। तोता मैना आदि पक्षी बिना जाने भी ईश्वर का नाम उच्चारण करना सीख जाते हैं, तो शिक्षित कहलाते हैं, उनके दाम बन जाते हैं, जो उनकी बोली सुनता है, प्रसन्न होता है और उनको पालना चाहता है। जो पक्षी गालियां देना सीख जाते हैं, उनको कोई अपने पास नहीं रखना चाहता और जो ईश्वर नाम नहीं बोलते, वे पक्षी जंगली कहलाते हैं, होते ही जंगली हैं, उनको कोई नहीं पालता। जिनके घर के पक्षी ईश्वर नाम लेते हैं, वे लोग शिष्ट कहे जाते हैं, इस प्रकार वे अपने पालने वाले का उपकार भी करते हैं। समझे, बिना समझे आलस्य से, होश में अथवा बेहोश में ईश्वर नाम जपने से पाप क्षीण हो जाते हैं, इसमें

किसी प्रकार का संशय नहीं है, यह बात शास्त्रकारों को मान्य है और इसमें शिष्ट भाई बहिनों का अनुभव भी है। इसलिये शिव, शिव, शिव रट!

हे बहिन! यदि तुझे तोते की तरह रटना रुचिकर नहीं है, तो अब बताती हूं, ले ध्यान देकर सुन ओंकार ईश्वर का अथवा ब्रह्म का नाम है। जैसे ओम् में अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा चार अक्षर हैं। इसी प्रकार शिव में शकार, इकार वकार और अकार चार अक्षर हैं, इसलिये ओम् और शिव नाम की समानता है। शकार स्थूल शरीर वाचक है, इकार सूक्ष्म शरीर वाचक है, वकार कारण शरीर वाचक है और अकार कारणातीत वाचक है। अथवा शकार जाग्रत् अवस्था है, इकार स्वप्न अवस्था है। वकार सुषुप्ति अवस्था है और अकार तुरीयावस्था है। अथवा शकार विश्व है, इकार तैजस है, वकार प्राज्ञ है और अकार आत्मा है। अथवा शकार विराट् है, इकार हिरण्यगर्भ है, वकार ईश्वर है और अकार परमात्मा है। अथवा शकार ऋग्वेद है, इकार युजुर्वेद है, वकार सामवेद है और अकार ब्राह्मण भाग-वेदशिरोभाग-उपनिषद् है। इस प्रकार समस्त विश्व शिव रूप है और शिव विश्व रूप है। कारण कार्य का अभेद होता है। जैसे मृत्तिका और घटादि का अभेद है इसी प्रकार विश्व और शिव का अभेद है क्योंकि शिव से ही विश्व उत्पन्न हुआ है। अथवा नाम नामी का अभेद होता है, इसलिये शिव नाम और शिव तत्व का अभेद है। जो जिसको भजता है, वह वह ही हो जाता है, यह वेद वेत्ताओं का कथन है। शिव का भजन करने से तू भी शिव रूप हो जायगी, इसलिये शिव, शिव, शिव, रट!

हे बहिन! शिव एक है; अद्वितीय है, सब कल्पनाओं से रहित शुद्ध सच्चिदानन्द रूप है, अजर है, अमर है, केवल है, निष्कल है, फिर भी अपनी माया शक्ति से विश्व रूप धारण करके अनेक रूप हो जाते हैं। सृष्टि की रचना करने के लिये शिव ब्रह्मा रूप बन जाते हैं, विष्णु होकर विश्व का पालन पोषण करते हैं और रुद्र रूप होकर जगत् का संहार करते हैं। सूर्य रूप होकर शिव ब्रह्मांड भर को प्रकाश दे रहे हैं। अग्नि रूप होकर अन्न को पचाते हैं। इन्द्र रूप होकर वर्षा करते हैं, धर्मराज होकर धर्मात्माओं को सुगति देते हैं, यम रूप धारण कर के पापियों को दण्ड देते हैं, नैऋति होकर दैत्यों की रक्षा करते हैं। वरुण होकर जलचरों का पालन करते हैं, वायु होकर सब क्रियायें करते हैं, कुबेर होकर धनाभिलाषियों को धन प्रदान करते हैं, चन्द्र होकर सब ओषधियों में रस उत्पन्न करते हैं, ईशान रूप से शिव ही सब को नियम में रखते हैं, शेष नाग होकर पृथिवी को धारण कर रहे हैं, ध्रुव रूप होकर ग्रह नक्षत्रादि को उनके स्थानों से हटने नहीं देते। ब्रह्मा की शक्ति ब्रह्माणी, विष्णु की शक्ति श्री और शिव की शक्ति भवानी ये सब शिव रूप ही हैं, शिव में से निकलती हैं, शिव में स्थित रहती हैं और अन्त में शिव में लय हो जाती हैं आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी ये सब शिव से व्याप्त हैं, इसलिये शिव रूप ही हैं। शिव एक सत्य हैं, इन के सिवाय समस्त विश्व मिथ्या है। जैसे रज्जु में सर्प कल्पित है, जैसे सीपी में चाँदी कल्पित है, जैसे मरु भूमि में जल कल्पित है, इसी प्रकार अधिष्ठान रूप शिव में समस्त विश्व अध्यस्त है। शिव की माया से मोहित पुरुषों को शिव जानने में

नहीं आते, वे विश्व को ही सच्चा मानते हैं। इस लिये विश्व में ऊँचनीच योनियों में भटका करते हैं। संसार शव रूप है, शिवशिवरूप यानी कल्याण रूप हैं, जो संसार रूप शव को भजता है, वह शव यानी मरणशील हो जाता है और शिव का भजने वाला शिव हो जाता है, इसलिये शिव, शिव, शिव रट!

जैसे समष्टि रूप शिव हैं, इसी प्रकार व्यष्टि रूप भी शिव ही हैं। जैसे समष्टि का व्यापार साक्षात् शिव ही चला रहे हैं, इसी प्रकार व्यष्टि का व्यापार भी शिव के अधीन है। श्रोत्र रूप होकर शिव शब्दों को सुनते हैं। त्वचा रूप होकर कोमल कठिन, शीतोष्ण स्पर्श करते हैं, नेत्रों से नील पीतादि रूपों को देखते हैं, जिह्वा से षट् रस का स्वाद लेते हैं और नासिका से सुगन्ध दुर्गंध दोनों प्रकार के गंध सूंघते हैं। वाणी से शिव बोलते हैं। हाथ से ग्रहण करते हैं, पदों से चलते हैं, उपस्थ से आनन्द लेते हैं और पायु से विसर्जन करते हैं। प्राण होकर शिव ऊपर को जाते हैं, अपान होकर नीचे को जाते हैं, व्यान होकर भारी वस्तुओं को उठाते हैं, समान होकर अन्न रस को सब अंगों में ले जाते हैं और उदान होकर शरीर को पृथिवी पर गिरने नहीं देते। मन होकर शिव मनन करते हैं, चित्त होकर चिंतन करते हैं, बुद्धि होकर निश्चय करते हैं और अहंकार होकर अभिमान करते हैं। इस प्रकार कर्ता, भोक्ता, मन्ता, प्रमाता, विज्ञाता अहंकर्ता शिव ही हो जाते हैं। सब क्रिया शिव करते हैं और परमार्थ से कुछ नहीं करते हैं। यह उनकी माया की शक्ति का प्रभाव है कि करते हुये से दिखायी देते हैं परन्तु हैं अकर्ता! शव के भक्त ही शिव के इस रहस्य को जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता सका। शिव भजन के प्रभाव से थोड़े दिनों में तू स्वच्छ होजायगी और सब भर्म खुल जायगा कि कैसे शिव कर्ता हैं और कैसे अकर्ता हैं, इसलिये शिव, शिव, शिव, रट!

कर्ता, भोक्ता, प्रमाता, विज्ञाता ही शिव हों, ऐसा भी नहीं है किंतु कर्म, भोग्य, प्रमेय और विज्ञेय भी शिव ही हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय शिव ही हैं, वचन, आदान, गमन, आनन्द और विसर्जन भी शिव ही हैं, पांचों प्राणों की क्रिया भी शिव ही हैं और मन्तव्य, चिंतितव्य, बोद्धव्य और अहंकर्तव्य भी शिव ही हैं, सब कुछ शिव हैं और कुछ भी नहीं हैं क्योंकि निर्विकार हैं, निराकार हैं, निर्मल हैं, शुद्धबोध हैं, अक्रिय हैं, असंग हैं, अनंग हैं, सर्व प्रपंच से रहित हैं, निष्कल हैं, निरत्य हैं, निरंजन हैं, एक हैं, भेद से वर्जित हैं, न कहीं आते हैं, न कहीं जाते हैं, न जन्मते हैं, न मरते हैं, न घटते हैं, न बढ़ते हैं किन्तु सर्वदा एक रस हैं, एक रस में कल्पना संभव ही नहीं है, फिर भी माया ने निर्विकल्प में भी कल्पना दिखायी है, आश्चर्य है, महान् आश्चर्य है! कुछ आश्चर्य भी नहीं है, माया में सब कुछ सामर्थ्य हैं, तभी वेदवेत्ता माया को 'अघट घटना पटीयसि' कहते हैं, शिव के नाम लेने से माया दूर भाग जाती है, विशेष पाप हों, तो माया के भागने में देर भले ही लगे, परन्तु देर सवेर भाग अवश्य जाती है, इस में किंचित् भी संशय नहीं है, इसलिये हे कल्याणाभिलाषिणी! शिव, शिव, शिव रट!

हे श्रेयसाधका! शिव एक हैं, गुण, क्रिया, सम्बन्ध उन में कोई नहीं है, इसलिये उनका नाम कोई नहीं है, क्योंकि गुण क्रिया सम्बन्ध वाली

वस्तु का ही नाम होता है। जैसे देवदत्त कृष्ण या श्वेत रंग वाला होने से काला अथवा गोरा कहलाता है, पढ़ा हुआ होने से पाठक कहलाता है, रसोई बनाने वाला होने से पाचक कहलाता है, पुत्र के सम्बन्ध से पिता कहलाता है और पौत्र के सम्बन्ध से पितामह कहलाता है। शिव में गुणादि कोई नहीं है, इसलिये शिव का कोई नाम नहीं है फिर भी ऋषि, मुनि, भक्तों ने उनके अनेक नाम कल्प लिये हैं। शिव ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छ भग वाले हैं, इसलिये भगवान् कहलाते हैं अथवा भूतों की उत्पत्ति, प्रलय, गति, आगति, विद्यमानता और अविद्यमानता, इन छः को शिव जानते हैं, इसलिये भगवान् कहलाते हैं। शिव सब को आकर्षण करते हैं और सबके हृदय को खींचते हैं, इसलिये कृष्ण कहलाते हैं। कृषि सत्ता का नाम है और ण आनन्द का नाम है, शिव सत् और आनन्द का नाम है, शिव सत् और आनन्द स्वरूप हैं. इसलिये भक्त उनको कृष्ण कहते हैं। शिव सब के मन को जानने वाले हैं, भक्तों के साथ, प्रकृति के साथ, अथवा ब्रह्माँड के साथ रमण करते हैं, इसलिये राम कहलाते हैं। अथवा रा का अर्थ विश्व है और म का अर्थ ईश्वर है, इसलिये शिव राम कहलाते हैं। शिव कल्याण की राशि हैं, इसलिये शिवा कहलाते हैं अथवा शिव नाम मोक्ष का है और 'आ' देने वाले का नाम है, शिव मोक्ष दाता हैं, इसलिये वे शिवा कहलाते हैं। सारूप्य मुक्ति का नाम नार है और अयन नाम आधार का है, शिव मुक्ति के आधार हैं, इसलिये नारायण कहलाते हैं। शिव सब के आत्मा हैं। इस लिये परमात्मा कहलाते हैं। शिव सब भूतों में प्रवेश किये हुये हैं. इसलिये विष्णु कहलाते हैं अथवा भक्तों को माया से वियुक्त करते हैं। इसलिये विष्णु कहलाते हैं। अपरिच्छिन्न वस्तु का नाम ब्रह्म है, शिव अपरिच्छिन्न हैं, इसलिये ब्रह्म कहलाते हैं। श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ का नाम परात्पर है। शिव सब से श्रेष्ठ हैं. इसलिये परात्पर कहलाते हैं। शुद्ध सम्वित् यानी ज्ञान का नाम परासम्वित् है, शिव शुद्ध ज्ञान स्वरूप हैं, इसलिये परासम्वित् कहलाते हैं, शिव नाम कल्याण का है, शिव कल्याण करने वाले होने से परम शिव कहलाते हैं। पापों को हरते हैं इसलिये शिव हर कहलाते हैं। इसी कारण हरि भी शिव का ही नाम है, इस प्रकार भगवान् परमेश्वर, कृष्ण, राम, शिवा, दुर्गा, नारायण, हर, हरि, परंब्रह्म, परात्पर, परासम्वित्, परमशिव इत्यादि शिव के अनेक नाम हैं, वस्तुतः उनका कोई नाम नहीं है, शिव रटने से शीघ्र ही भेद खुल जायगा कि सब नाम शिव के ही हैं और शिव का कोई नाम नहीं है, इसलिये शिव शिव, शिव रट!

देख! तू मांस का लोथड़ा नहीं है किन्तु मांस का लोथड़ा तेरे रहने का गोलक है। तेरे चार गोलक हैं। एक जीभ, दूसरा कण्ठ, तीसरा हृदय और चौथा नाभि। जब तू जीभ से काम करती है, तब वैखरी वाणी कहलाती है, जब कण्ठ में रहती है तब मध्यमा कहलाती है, जब हृदय में रहती है, तब पश्यन्ती कहलाती है और जब नाभि में रहती है तब परा कहलाती है। जाग्रत् में तेरा स्थान जीभ है, स्वप्न में कण्ठ है, सुषुप्ति में हृदय है और तुर्या में नाभि है। प्रथम के तीन स्थान व्यवहार के हैं और अन्त का स्थान परमार्थ स्वरूप है। जैसे शिव व्यवहार में जाग्रतादि तीन अवस्था

रूप हैं और परमार्थ से तुर्या रूप है। इसी प्रकार तू है, तभी व्याकरण के आचार्य परा वाणी को मोक्ष मानते हैं। तू मोक्ष स्वरूप है ही परन्तु बिना जाने तुझे मोक्ष का फल नहीं है, फल कहीं से लाना नहीं है, शिव, शिव, शिव रट! सब संकट दूर हो जांयगे और परमानन्द होगा, सच कहा है कि:-

कं-संकट शिव रटते कटें, होय परम कल्याण।
स्वप्ने हू नहिं शोक हो, पावे पद निर्वाण॥
पावे पद निर्वाण, गर्भ कारागृह छूटे।
होय अचल स्वाराज्य, नित्य अक्षय सुख लूटे॥
जयदेवी! सब भूल, रात दिन शिव शिव शिव रट।
सुख पावे भरपूर, दूर हों सारे संकट॥

बोलो! सुहानी से भी सुहानी सयानी से भी सयानी लक्ष्मी की ज्येठानी, भवानी की दौरानी, ब्रह्मा की पटरानी, गुरुओं की गुरुवानी, कवियों की कल्याणी काश्मीर की महारानी, सरस्वती वेद वाणी की जय!

जय जय मृत्युंजय।

[ले० श्री जगन्नाथ मिश्र गौड़ "कमल"]

हे चन्द्रचूड़ मदनांतक, शिव शूलपाणि गंगाधर!
हे वामदेव, त्रिपुरारी, शितिकंठ, शंभु शशिशेखर!!

बैठे कैलास-गुफा में, निज डमरू मधुर बजाओ।
डिम-डिम-डिम स्वर फैला कर भीषण भव-भीति भगाओ॥

हम तुम्हें हृदय में धारें, मनमें यह भाव उगाओ।
गिरिजेश हमें जीवन में, निज भक्तों-सा अपनाओ॥

तानो जग के द्वन्द्वों पर, अति तीक्ष्ण त्रिशूल भयंकर।
पापों के छिपे बनो तुम, हे लोकनाथ, प्रलयंकर॥

कर दो जीवन लहरों को, सुरसरी-सलिल सा पावन।
खोलो त्र सरा विलोचन, अज्ञान तिमिर विनशावन॥

प्रतिदिन जय-जय मृत्युंजय, हम बोलें सांझ सवेरे।
प्राणों में भरें उमंगों, भूतेश तुम्हारे प्रेरे॥

क्या ईश्वर नहीं है

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

एक सन्त अपने शिष्य को वेद वेदांग पढ़ा कर इस प्रकार समझाने लगे।

सन्तः- हे प्रिय दर्शन, तेरे हित की कामना करके परम गुह्य से गुह्य वेद शास्त्रों का निचोड़ महानुभाव तत्वज्ञों का प्रत्यक्ष अनुभव वर्णन करता हूं जिसके बारबार मनन करने से इस दुःखागार संसार से छूटकर निरामय पद को प्राप्त हो जायगा, तू चित्त को स्थिर करके आदर भाव से श्रवण कर। हे सौम्य! यह मन मर्कट की तरह सदा चंचल रहता है, साधारण जन इस मनके कारण ही बड़े २ अनर्थों में फंस गये हैं, यह चंचल मन ही सब दुःखों का कारण है। सुषुप्ति में मन के गति हीन होने पर सुख मिलता है, इसलिये जो मैं तुझ को बतलाता हूं, उसे सावधान पूर्वक सुन। सुनते समय अनास्था होने पर सुनना, न सुनने के बराबर है, चित्र में खींचे गये वृक्ष की तरह वह फल रहित हो जाता है यानी वक्ता के कहे हुए हित के उपदेश को यदि श्रोता अनादर कर ग्रहण नहीं करता तो बना बनाया रस गल जाता है। इसी को श्रीगोस्वामी जी ने रामायण में कहा है "श्रोता वक्ता ज्ञान निधि, कथा राम की गूढ़" "सावधान सुन सुमति भवानी" इत्यादि!

निराधार तर्क जो हानि करने वाला मार्ग है उसको त्याग कर सुविचार का आश्रय लेने से लोगों को इसका उत्तम फल तत्काल मिलता है। अतएव युक्ति सहित विचार पद्धति का सहारा लेकर दृढ़ निष्ठा से साधन करना चाहिये। ऐसे विश्वासी मनुष्य को फल मिलता है! इसलिये मन माना, तर्क छोड़ कर विचार कीजिये। समस्त संसार की प्रवृत्ति विश्वास के कारण ही सफल होती है। सुविचार से योग्य समय की पहिचान कर किसान जमीन को जोतता है। वितंडावाद छोड़ कर सरल विचार और विश्वास से ही सोना, चांदी, रत्न, औषधि आदिका स्वरूप निश्चित होता है। सरल विचार और विश्वास की सहायता से स्वहित का निश्चय करके साधन करने के लिये अच्छा दृढ़ प्रयत्न करना चाहिये। केवल शुष्क तर्क वादी बन कर प्रयत्न का त्याग न करना चाहिये। विश्वास पूर्वक प्रयत्न करने वाले का परिश्रम कभी वृथा नहीं जाता, जोरदार प्रयत्न करने पर फल प्राप्त कैसे नहीं होगा? अवश्य होगा पुरुषार्थ से किसानों को धान्य मिलता है व्यापारियों को द्रव्य मिलता है और राजाओं को राजवैभव मिलता है। ब्राह्मणों को सर्व सुखकारी विद्या मिलती है, शूद्रों से सेवा होती है, देवताओं को अमृत मिलता है, तपस्वियों को पुण्यलोक प्राप्त होते हैं अथवा किसी को जो कुछ मिलता है वह सब पुरुषार्थ के द्वारा ही मिलता है! क्या विश्वास रहित और यथेच्छ तर्क करने वाले को कभी कहीं थोड़ा भी कुछ फल मिला है? एकाधबार फल न मिलने पर जिस मनुष्य का विश्वास नष्ट हो जाता है उसे स्वयं अपना शत्रु समझना चाहिये। अतएव विश्वास और प्रमाण पुष्ट विचार से बढ़ने वाले पुरुषार्थ पूर्ण प्रयत्न को स्वीकार कर मोक्ष के मुख्य साधन का पाठ सीखना चाहिये। मोक्ष के साधन भी अनेक हैं, उनमें से जिसका आचरण करने पर अपने किये हुए सब काम सफल हो जावें उस मुख्य साधन का सहारा पकड़ना चाहिये। निष्काम भाव से किये हुए सब कर्मों का फल मिलता है। इसलिये उचित है कि प्रमाण पुष्ट विचार और अनुभव से साधन का निश्चय कर उसके अनुसार दृढ़ता से कार्य आरम्भ करना चाहिये।

जिस की प्राप्ति होने पर फिर दुःख पाने का प्रसंग ही नहीं आता उसे ही परमश्रेय कहना चाहिये। सूक्ष्म विचार करने पर इस दृश्य संसार में चारों ओर दुःख ही दुःख दिखाई पड़ता है। तात्पर्य यह है कि जो दुःख मिश्रित है वह परम श्रेय नहीं है। संपत्ति, स्त्री, पुत्र, राज्य, कीर्ति, सेना, लौकिक यश, विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता, प्रभाव शाली आंखें, भव्य शरीर, अंग की कोमलता आदि सब काल सर्प के मुंह में जाने वाली क्षणिक चीजें हैं। इन सब में दुःख का अंकुर उत्पन्न करने वाला सूक्ष्म बीज है, फिर इनसे परम श्रेय कैसे मिल सकता है? परम कल्याण का मुख्य साधन भिन्न ही है। धन आदि विषय का उपयोगी मालूम होना शुद्ध भ्रम है यह मोह से होता है। सारे जगत् का कर्ता परमेश्वर मोह उत्पन्न करने वाला है, उसी से सब मोहित हो गये हैं।

देखने में आता है कि मांत्रिक लोग भी अपनी थोड़ी सी विद्या के बल पर लोगों में भ्रम

उत्पन्न कर देते हैं, परन्तु मर्यादित विद्या होने के कारण वह सब लोगों को भ्रम में नहीं डाल सकते। अब विचार करने की बात है कि इस अल्प विद्य मायावी से जब लोग छुटकारा नहीं पा सकते तब महामायावी महादेव से कौन बच सकता है? उस मौत्रिक की अल्प विद्या का उलंघन करने के लिये वैसी विद्या सीखनी पड़ती है परन्तु वह भी उसकी संगति किये बिना-उसकी कृपा संपादन किये बिना कभी नहीं मिल सकती। तो फिर उस मायावी ईश्वर को प्रसन्न किये बिना इस संसार रूपी महा मोह का उलंघन कैसे किया जा सकता है? इसलिये अनन्य भाव से उसकी शरण में ही जाना चाहिये। जो उसे उत्तम रीति से प्रसन्न कर लेगा उसे उसकी कृपा से महाविद्या प्राप्त होगी और उस विद्या के द्वारा वह इस महामाया के मोह से पार पा सकेगा। इस परम कल्याण को प्राप्त करने के लिये दूसरे अनेक मार्ग बतलाये गये हैं सही, परन्तु परमेश्वर की कृपा के बिना वे सब व्यर्थ हैं। अतएव सारे विश्व के संचालक उस परमेश्वर की आराधना पहिले से करनी चाहिये, वह मोह के निरसन के लिये सब साधन मिला देगा।

यदि तू कहे कि "ईश्वर है इसका क्या प्रमाण है?" तो देख यह संसार रूप कार्य प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है। यह सच है कि पृथ्वी, अग्नि इत्यादि की उत्पत्ति होती हुई किसी को दिखाई प्रत्यक्ष नहीं देती परन्तु ये सब अवयव सहित पदार्थ हैं। अतएव किसी के तो कार्य होंगे ही। यह भी देखने में आता है कि बिना नियामक संचालक के एक छोटीसी गृहस्थी की व्यवस्था ठीक २ नहीं चलती। जब कोई नियामक नहीं रहता तो उसकी अव्यवस्था यानी खंड खंड हो जाता है, तो विचारिये इतना बड़ा भारी कार्य जिसके यथार्थ जानने के लिये बड़े २ विद्वानों की भी बुद्धि चक्कर खाती है, क्या इसका कोई नियामक नहीं है? यदि नियामक न मानोगे तो अव्यवस्था हो जायगी यानी उसके नियम बिना जल पर पृथ्वी ठहर नहीं सकती, सूर्य जो कभी नहीं ठहरता उसी के भय से दौड़ता रहता है, अपनी मर्यादा से हट नहीं सकता मृत्यु भी उसी के भय से दौड़ती रहती है कभी नहीं चूकती, उसी के भय से अग्नि तपती है कभी शीतलता को प्राप्त नहीं होती और इन्द्रदेव भी उसी के भय करके अपनी मर्यादा में रहते हैं।

यदि स्वभाववादी और परमाणुवादी यह कहें कि द्वयुक त्रिणुक तिणुक आदि मिलकर स्थूलता को स्वभाव से ही प्राप्त हो जाते हैं तो उनसे पूछना चाहिये कि परमाणु तो जड़ हैं तेरे की चींच में लाल लाल परमाणु कैसे इकट्ठे हो जाते हैं? शरीर में हरे २ कैसे पैदा होजाते हैं। इस प्रकार के संयुक्तिक अनुमान से और अनेक शास्त्रों से इस बात को दृढ़ता मिलती है और उनसे निश्चय होता है कि इस संसार का कोई न कोई कर्ता है और वह सर्व साधारण कार्य कर्ताओं से बिलकुल भिन्न प्रकार का है। यदि किसी शास्त्र में कहा गया हो कि "यह संसार किसी भी कर्ता के बिना आप ही आप उत्पन्न हुआ है" तो विचार द्वारा युक्ति पूर्ण माने जाने वाले दूसरे अनेक शास्त्रों ने उसका उत्तम खंडन किया है। केवल प्रत्यक्ष प्रमाणों के द्वारा विचारकर 'आत्मा ही नहीं है' सिद्ध करने वाले शास्त्रों को शास्त्र न समझ कर उसको केवल आभास समझना चाहिये, उस ओर ध्यान देना उचित नहीं है। शुष्क तर्क

से भरे रहने के कारण ऐसे शास्त्र त्याज्य हैं। कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि "इस सनातन संसार को किसी ने उत्पन्न किया ही होगा तो ज्ञान पूर्वक नहीं किया होगा, वह नैसर्गिक नियमों से अर्थात जड़ तत्वों से ही बना है।" परन्तु यह कथन भी भ्रम पूर्ण है, क्यों कि क्रिया बुद्धि पूर्वक ही होती है। बिना बुद्धि के क्रिया हो जाना कहीं नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त अनेक शास्त्रों के देखने पर कि उसका कर्ता बुद्धि युक्त ही होगा यह नियम है कि पहिले कोई भी कार्य विचार में आता है फिर पीछे कार्यमें परिणत होता है। ऐसे युक्तिसहित तर्कों और शास्त्रों के योग से जगत् का कर्ता होना सिद्ध होता है। वह कर्ता व्यवहार के कर्ताओं से भिन्न है, क्योंकि जब उसके कार्य का आकलन (तलाश करना) नहीं बनता तो वह भी अचिन्त्य और अनन्त शक्ति का होगा। जब कार्य की मर्यादा दिखाई नहीं पड़ती तब कर्ता की सामर्थ्य भी मर्यादा के बाहर होगी अर्थात् शरण में आने वालों का उद्धार करने में वह पूरा समर्थ ही होगा। इसलिये हे शिष्य! अनन्य भावसे उसकी शरणमें जाना चाहिये। तुझ को विश्वास दिलाने के लिये एक दृष्टांत बतलाता हूं। एक पेड़ पर कबूतर और कबूतरी बैठे थे। इतने में एक बधिक धनुषबाण लिये हुए आ निकला और इनको देख मारने के लिये धनुष पर बाण चढ़ा निशाने की ठीक किया। इतने ही में ऊपर से एक बाज भी कहीं से उड़ता हुआ आ निकला और कबूतरों को देख उनको पकड़ने के लिये झपटा। चारों ओर से अपना अन्त समय देख कबूतरी व्याकुल हो अपने पति से बोली "हे प्राणनाथ! सिर पर काल आगया। नीचे दुष्ट बधिक सर सन्धाने खड़ा है और ऊपर से उड़ता हुआ बाज भी झपटने को तैयार है। यह सुन कबूतर बोला "प्रिये चिन्ता न करो ईश्वर की शरण को प्राप्त हो, इस समय हमारा रक्षक ईश्वर ही है, उसके सिवा किसी को भी सामर्थ्य नहीं कि एक बाल भी बांका कर सके।" हुआ भी ऐसा ही, ज्यों ही बधिक ने बाण छोड़ना चाहा त्यों ही उसके पैर में जहरीला सांप लिपट गया और उसने बधिक को काट खाया, जिसके सबब से उस बहेलिये का निशाना तिरछा हो गया और बाण उस बाज के जा लगा, जिससे वह नीचे गिर कर मर गया। इधर बधिक पहिले ही यमालय पहुंच चुका था। परमेश्वर! तेरी महिमा धन्य है। जिसको तू बचाना चाहता है, उसको दुनिया की कोई शक्ति मार नहीं सकती।

ईश्वर जो हम पर रहें, भली भांति अनुकूल।
फिर क्या शत्रु कर सकें, बनो रहे प्रतिकूल॥

जिस मनुष्यका ऐश्वर्य मर्यादित है उसे यदि सच्चे प्रेम भाव से प्रसन्न करलें तो वह भी अपने आश्रित के हित की इच्छा से पूरा २ प्रयत्न कर उसका मनोरथ पूर्ण करता है। तो त्रैलोक्य का अधिपति भक्तजनों का वत्सल ईश्वर जिस पर प्रसन्न हो जावे उसे क्या वह उसका इच्छित पदार्थ नहीं देगा? लौकिक दृष्टि से संसार के ऐश्वर्यवान पुरुष अनियमित, आदर भाव रहित, निष्ठुर और कृतघ्न भी होते हैं। परन्तु परमेश्वर दया का सागर है, किये हुए का जानने वाला है और निश्चित रूप से फल का देने वाला है। यदि ऐसा न होता तो वह सब का वन्दनीय कैसे हुआ होता? यदि वह अव्यवस्थित होता तो उसका यह सब राज्य नष्ट हो जाता। इससे क्या यह नहीं सिद्ध होता

कि वह दयासिन्धु ईश्वर सुव्यवस्थित ही है? इसलिये हे शिष्य! विलंब न कर सर्व भाव से तत्परता के साथ उसी की शरण जा वही आपको परम कल्याण के मार्ग में लेजा कर आदि स्थान में पहुंचा देगा।

दम व्याख्या

[ले० श्री पं० रेवाधर जी पाण्डेय]

सुख सभी प्राणी चाहते हैं। यह सभी की इच्छा रहती है कि हमें निरंतर सुख हो, दुःख कभी न हो। परन्तु पशु पक्षी तिर्यगादि योनियां तो भोग योनि होने के कारण सुख सम्पादन में उपाय हीन हैं। एक मनुष्य योनि ही ऐसी योनि है जिसमें उपाय करने पर सदा के लिये सच्चे सुख और परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है। परन्तु मनुष्य प्रमादवश सांसारिक भोगों में ही सुख समझ कर आजीवन उन्हीं की प्राप्ति के लिये चेष्टा करते रहते हैं, इसलिये वे सच्चे सुख की प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं। मनुष्य देह की दुर्लभता के विषय में भगवान् राम कहते हैं।

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा, ।
सुरदुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाये।
सबतें अधिक मनुज मोहि भाये ॥

इस प्रकार मनुष्य शरीर केवल भगवान् की दया से मिलता है:-

कबहुक करि करुणा नर देही। देत ईश बिनु हेतु सनेही ॥

ऐसी देह पाकर जो उस परम सुख की प्राप्ति के लिये कोई प्रयत्न नहीं करते वे बड़ी भूल करते हैं और इस भूल के लिये उन्हें अन्त में पछताना पड़ता है-

जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिन्दक मन्दमति, आतम हन गति जाइ ॥

उस परमानन्द की प्राप्ति के लिए वेद शास्त्र पुराणों ने तथा ऋषि मुनि महात्माओं ने अनेक उपाय बतलाये हैं जिनमें दम (शांतमन) ही उस परमानन्द के प्राप्त करने का प्रथम सोपान महात्माओं ने कहा है। अतएव उसी दम की व्याख्या करने का उद्देश्य इस लेख में रक्खा गया है।

वास्तव में दम की महिमा पर वही मनुष्य कुछ लिख सकता है जो इसके प्रभाव को जान गया है। मैं तो अपनी तुच्छ मति के अनुसार कुछ लिखने का यों ही साहस कर रहा हूं। अतः इस लेख में जो कुछ त्रुटियाँ रही हों उनके लिए आप लोग क्षमा करें।

एक समय महाराजा युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से यह प्रश्न किया "कि वेदाध्ययन करने वाले धर्मात्मा मनुष्य को इस लोक तथा परलोक में सुखदायक बहुत शाखा वाले धर्म में से कौनसा धर्म अत्यन्त अनुष्ठान करने योग्य है।" यह सुन भीष्म पितामह बोले-

दमं निःश्रेयसं प्राहुर्वृद्धा निश्चयदर्शिनः ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः ॥

सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखञ्च प्रतिबुध्यते ।
सुखं पर्य्येतिलोकांश्च मनश्चास्यप्रसीदति ॥
अदान्तः पुरुषः क्लेशमभीक्ष्णं प्रतिपद्यते ।
अनर्थांश्च बहूमन्यान्प्रसृजत्यात्मदोषजान् ॥

(महाभारत शान्ति पर्व अ० १६०)

निश्चय करके देखने वाले महात्माओं ने दम (शांत) चित्तको सुख दायक कहा है। दम ही मुख्य करके ब्राह्मण का सनातन धर्म है। हे युधिष्ठिर ! जो पुरुष शान्त चित्त है वह सुख से सोता, जागता, लोकों में भ्रमण करता और आनन्दयुक्त रहता है और जो अशांत चित्त है वह सर्वदा दुःखी तथा अनर्थकारी होता है।

इदं पवित्रं परमं माङ्गल्यं परम दमः ।
दमेन सर्वमाप्नोतियत्किञ्चिन्मनसेच्छति ॥

(अध्याय ७२)।

श्रुति भी दम के विषय में निम्न लिखित उपदेश करती है।

तदेतदेवैषा दैवी वागनुवदतिस्तनयित्नुर्दद इति दाम्यत दत्त दयध्वमिति तस्मात्त्रयं शिक्षेदमं दानं दयेति च ।

(बृहदारण्यक उपनिषद् ५२)

दम इति नयतं ब्रह्मचारिणस्तस्माद्दमं रमन्ते दमेन दांताः किल्विषमवधुन्वंति दमेन ब्रह्मचारिणः स्वर्गमगच्छन् दमो भूतानां दुधर्षो दमे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्दमं परमं वदन्ति ॥

तै० उ० १०-६२

यह दैवी वाक् (देवताओं की वाणी) बिजली दद दद इत्याकारक शब्द करती है कि तुम इन्द्रिय निरोध, दान और दया करो। इसलिए मनुष्य को दम, दान और दया इन तीनों को सीखना चाहिये पूर्व श्रुति से प्रतिपादित दम (मनोनिग्रह) मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। इस वैदिक आज्ञा से ही ब्रह्मचारी दम में लग हैं; दम से शांत ब्रह्मचारी पापों को दूर करते हैं। दम में सम्पूर्ण वस्तु है इसी कारण दम को उत्तम कहते हैं।

जिस दम को श्रुति तक इतनी प्रशंसा करती हैं उसके सम्बन्ध में प्रत्येक विचारशील मनुष्य के मन में यह प्रश्न उठता है कि दम कहते किसको हैं?

मनसो दमनं दमः (महाभारत)

अन्तःकरण संयमो दमः दमो मद त्यागः (मिताक्षरा)

मन की वृत्तियों के दमन करने को दम कहते हैं। ऋषियों और मुनियों का यह उपदेश है कि मन को असत् तथा अहित विषयों से सदैव रोकने की चेष्टा करना और उसे सत् तथा हित विषयों की ओर लेजाना मनुष्य का परम धर्म है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि विकारों से जनित जितने भी सांसारिक झगड़े हैं उनका मुख्य कारण मन का असत् और अहित पदार्थों की ओर चला जाना ही है।

आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक जितने भी दुःख हैं उन सबका कारण मन ही का उच्छृंखल हो अनियमित रूप से इधर उधर स्वच्छन्द विचरना है। जब मन श्रेय को न समझता हुआ प्रेय पदार्थों के वश में हो अनित्य को नित्य और असत् को सत् समझ कर उनमें रम जाता है, तभी मनुष्य सब प्रकार के दुःखों को भोगता है। विष्णु पुराण में कहा है कि जो योगी इस चञ्चल मन को अपने वश में कर लेते हैं वे सब प्रकार के दुःखों से छूट जाते हैं और परम आनन्द को भोगते हैं। मन की शक्ति अकथनीय है। मन ही मनुष्य को संसार में नेकनाम बना देता है और मन ही इसे बदनाम करता है। मनही के द्वारा

मनुष्य साधु बन जाता है और मन ही उसे दुष्टात्मा बना देता है। मन ही से एक चक्रवर्ती राजा अपने आपको महा दुःखी और दीन समझता है और मन ही एक रंक के हृदय में ऐसे विचार उत्पन्न कर देता है कि वह अपने आन्तरिक आनन्द के सामने त्रिलोकी के राज्य को तुच्छ समझता है और यह मन की ही महिमा है कि उसकी कृपा से वह मनुष्य जीवन्मुक्त बनजाता है। सत्य कहा है कि-

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः"

अर्थात् मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है। विद्वानों ने इस मन की दो गति बतलाई हैं जिनको व्याख्या योगदर्शन का भाष्य करते हुए महाराज व्यासदेव ने इस प्रकार की है-

चित्तनदी नामोभयतो वाहिनी वहति कल्याणाय वहति पापाय च। या तु कैवल्य प्राग्भारा विवेक विषय निम्ना सा कल्याण वहा। संसार प्राग्भाराऽविवेकविषय निम्ना पाप वहा।

अर्थात् चित्त रूपी नदी की दो धारा हैं। एक कल्याण के लिये और दूसरी पाप के लिये बहती है। जो मोक्ष रूपी पहाड़ से निकलती है और ज्ञान तथा विवेक रूपी भूमि में बहती है वह कल्याण सागर में गिरती है और दूसरी जो संसार रूपी पर्वत से निकल कर अज्ञान और अविवेक की भूमि में बहती हुई जाती है वह पाप के समुद्र में जाकर मिलती है। भावार्थ यह है कि मन की गति बुरे और भले दोनों ही विषयों की ओर है। उपनिषदों में भी मन का लक्षण इस प्रकार कहा है:-

कामः संकल्पो विचिकित्साश्रद्धाश्रद्धाधृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भी-रित्येतत् सर्वं मनएव।

इच्छा, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, लज्जा, ज्ञान और भय ये सब मन ही के लक्षण हैं और जिसमें इतनी शक्तियाँ हैं उसी मन में मनुष्य के कल्याणार्थ परमदयालु परमात्मा ने एक लक्षण और भी रक्खा है जिसके लिए नैयायिक कहते हैं:-

"युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्"

एक समय में एक से अधिक ज्ञान मन में उत्पन्न नहीं हो सकते एक साथ दो ज्ञान की उत्पत्ति न होना ही मन का लक्षण है। इस लक्षण से यह बात स्पष्ट है कि एक ही समय में परस्पर विरोध रखने वाले दो भाव मन में कदापि उत्पन्न नहीं हो सकते, जिस समय मन में श्रद्धा होगी उस समय अश्रद्धा नहीं रह सकती और जिस समय धृति होगी उस समय अधृति का होना असम्भव है, अतएव जिस समय कि मन का बहाव अच्छे विषयों की ओर होगा उस समय उसमें बुरे विषयों का संचार नहीं हो सकता। इस परमोपयोगी लक्षण से मनुष्य का यह कार्य होता है कि जब कभी उसे अपने मन को बुरे विषयों से हटाना हो अर्थात् दम धर्म साधन करना हो तो वह उसे अच्छे विषयों में लगादे इस प्रकार श्रुतिस्मृति प्रतिपादित दम का धर्म स्वयं सधने लगेगा। ईश्वर प्राप्ति के लिए जिस योग साधन की बड़ी प्रशंसा की जाती है उस में भी चित्त की वृत्तियों का निरोध आवश्यकीय बतलाया है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (योग दर्शन)

वस्तुतः जब तक मन की वृत्तियों को इधर उधर जाने से नहीं रोका जाता तब तक चित्त में स्थिरता नहीं आती और जब तक चित्त स्थिर न होगा तब तक योग का होना दुष्कर है, हिलते हुए जल को जब तक स्थिर अवस्था में न लाया जावे

अथवा जब तक शीशे के एक ओर पारा चढ़ाकर उसमें दूसरी ओर निकल जाती हुई प्रकाशक किरणों को न रोका जावे तब तक न तो उस जल ही में कोई प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ सकता है और न वह शीशा ही दर्पण का काम दे सकता है। सारांश यह है कि मन की वृत्तियों का निरोध जिसे कि दम कहते हैं, इतने महत्व का धर्म है कि उसके द्वारा ईश्वर प्राप्ति भी हमारे लिए सुलभ हो जाती है। परन्तु जिस मन को निग्रह करने का इतना भारी फल है उस मन को शास्त्रकारों ने दुर्निग्रह अर्थात् कठिनता से निग्रह होने योग्य बताया है आसानी से नहीं। गीता का वाक्य है-

'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्"

हे अर्जुन! निस्सन्देह मन बड़ा चंचल और दुर्निग्रह है। परन्तु इस कठिनता से भीरु होकर बैठ रहना मनुष्य का धर्म नहीं। मन का दमन कठिन कितना ही हो परन्तु असम्भव नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता ही बतलाती है कि-'अभ्यासेन च कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते" यही मन अभ्यास और वैराग्य द्वारा अपने वश में आजाता है। व्यासदेव भी कहते हैं-'तत्र वैराग्येण विषय स्रोतः खिली क्रियते' यदि पाप वहा नदी का स्रोत बन्द करना हो तो उसको वैराग्य द्वारा बन्द कर सकते हैं। इस स्थान पर मनोनिग्रह के साधन अभ्यास और वैराग्य की व्याख्या करना भी आवश्यक है।

'तत्र स्थितौ यत्नो अभ्यासः'

चित्त जो अनेक विषय में चञ्चल रहता है उसे ईश्वर में अत्यन्त शान्त स्थिति के साथ उद्योग, बल, अर्थात् दृढ़ता और उत्साह पूर्वक उसके साधनों के अनुष्ठान करने को अभ्यास कहते हैं।

स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढभूमिः।

वह अभ्यास दीर्घकाल तक प्रति दिन या अपने नियत किये हुए भागों में तप, अर्थात् युक्ताहार विहार अथवा अपने वर्णाश्रम के योग्य ब्रह्मचर्य द्वारा और इन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोक कर श्रद्धा पूर्वक सेवन किया हुआ दृढ़ होता है।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।

यथार्थ यह है कि स्त्री, अन्न पान आदि राज्य पर्यन्त सब सांसारिक विषयों की दोष दृष्टि से इच्छा न करना, एवम् पारलौकिक विषयों की भी इच्छा न करना, अर्थात् चित्त को समस्त वासनाओं से हटा कर अपने वश में करके उसे ईश्वर में लय रखने को वैराग्य कहते हैं।

जिस समय कि मनुष्य निष्काम कर्म करने लगे और न तो उसमें लोकैषणा (प्रतिष्ठा आदि की इच्छा) न पुत्रैषणा (पुत्रादि सन्तान की इच्छा) और न वित्तैषणा (धन की इच्छा) रहे तो समझ लेना चाहिए कि अब मन में वैराग्य आगया।

बहुत से लोगों का यह मत है कि यदि हम मन में उठी हुई सम्पूर्ण इच्छाओं को पूरा करदें तो मन में वैराग्य स्वयं ही आजायगा परन्तु मन की इच्छाओं का पूरा करना घी द्वारा अग्नि को बुझाना है। अतएव मन को निग्रह करने का एक मात्र उपाय इच्छाओं को न उत्पन्न होने देना ही है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिस्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

जब इस मनुष्य के हृदय में रहने वाले संकल्पादि सम्पूर्ण निवृत्त हो जाते हैं तदनन्तर मनुष्य

अमृत (मुक्त) हो जाता है और ब्रह्म को प्राप्त होता है।

मन को बाह्य विषयों से रोकने में पहिले तो कठिनता अवश्य प्रतीत होती है परन्तु पीछे से वही मन जिस समय अन्तर्मुख हो अपनी आत्मा का दर्शन करता हुआ परमानन्द को भोगता है, तब वह स्वयं बाह्य समस्त विषयों से विरक्त हो जाता है। इस बात का शास्त्र भी उपदेश करते हैं।

तत्परमपुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्याम् ।

आत्मा को जान लेने पर मन में किसी प्रकार की भी तृष्णा शेष नहीं रह जाती। अतएव हमारा परम कर्तव्य है कि पुरुषार्थ के साथ दम के धर्म का साधन करते हुए अभ्यास और वैराग्य द्वारा दुर्दम्य मन को वश में करने की निरन्तर चेष्टा करते हुए मोक्ष के परम पद को प्राप्त करने के अधिकारी बनें।

मेरा

[ले० श्री मदनगोपाल जी "सिंहल"]

'मन्दिर' वही है 'मसजिद', 'गिरजा' वहीं हमारा।
जिस जां दिखा रहा हो, दीदार प्राणप्यारा ॥
'काशी' है वही 'काबा', 'जेरसलेम' मेरा ।
हो बस रहा जहां पर, इस प्राण का सहारा ॥
'गङ्गा' वहीं है 'जमना', 'ज़मज़म' वही हमारा ।
जहां श्याम-प्रेम-रस की बहती पवित्र धारा ॥
'लैटिन' हो 'फारसी' हो, भाषा वही है मेरी ।
सुनि जिसमें विनय रीझे वो नन्द का दुलारा ॥
'अल्लाह' 'गाड' 'ईश्वर', उससे हो पुकारूं मैं ।
जो भी है नाम उसका, सर्वस्व वो हमारा ॥

पुराण गाथा

[ले० श्री स्वामी पूज्य भोले बाबा जी]

चन्द्रार्धांकित संयुक्तौ, दुष्टानां मोहकारकौ ।
भवानीशंकरौ वन्दे, शिष्टानां मोक्षदायकौ ॥

श्रीकृष्ण तथा उपमन्यु मुनि संवाद ।

श्रीकृष्ण– हे मुने ! सर्वव्यापी अमित तेज वाले परमेश्वर की मूर्ति से यह विश्व जिस प्रकार उत्पन्न है, वह मैंने यथावत् सुना, अब मैं आप से यह जानना चाहता हूं कि परमेश्वर का क्या स्वरूप है और स्त्री पुरुष रूप उन दोनों से यह विश्व किस प्रकार से अधिष्ठित है ?

शिवतत्त्व निरूपण ।

मुनि उपमन्यु– हे कृष्ण ! श्रीमान् शिव और शिवा की विभूति और तत्व मैं तुम से संक्षेप से कहता हूं, विस्तार से तो शिवजी भी वर्णन नहीं कर सके। महादेवी साक्षात् शक्ति है और महादेव शक्तिमान् हैं। उन दोनों की विभूति का लेश मात्र यह सब चराचर जगत् है। कोई वस्तु अचिद्रूप यानी जड़ है और कोई वस्तु चिद्रूप यानी चेतन है। इन दोनों को वेदवेत्ता शुद्ध अशुद्ध और पर अपर कहते हैं। जो चित् चक्र अचित् चक्र से युक्त होकर संसरण करता है चलता है, वह ही अशुद्ध और अपर है और जो संसरण नहीं करता, वह शुद्ध और पर है। पर और अपर दोनों चेतन अचेतन रूप हैं। शिव और शिवा की यह एकात्मता स्वभाव से ही है। शिव और शिवा दोनों के आधीन विश्व है, वे दोनों विश्व के अधीन नहीं हैं क्योंकि यह विश्व ईशितव्य

यानी नियम्य है, इसलिये शिव शिवा विश्वेश्वर हैं। जैसे चन्द्र और चांदनी एक ही हैं, इसी प्रकार जो शिव हैं सोही देवी है और जो देवी है सोही शिव हैं, इन दोनों में अन्तर न समझना चाहिये। यह चन्द्र जैसे चाँदनी के बिना नहीं भासता, इसीप्रकार विद्यमान होने पर भी शक्ति के बिना शिव नहीं भासते। जैसे प्रभा के बिना यह सूर्य नहीं रहता और सूर्य बिना प्रभा नहीं रहती, इसी प्रकार शक्ति और शक्तिमान् की परस्पर अपेक्षा है, शिव बिना शक्ति नहीं है और शक्ति बिना शिव नहीं हैं।

जिस शक्ति से नित्य शिव देह धारियों को मुक्ति और मुक्ति देने में समर्थ होते हैं, वह परा-चिन्मयी शक्ति आद्य है, एक है और शिव के आश्रित है। अखिलेश्वर परमात्मा शिव के अनुसारी गुणों के समान धर्म वाली ही वह शक्ति है। वह एक, परा, चिद्रूप, प्रसव धर्म वाली शक्ति शिव की इच्छा से विभक्त यानी भिन्न २ होकर बहुत प्रकार से विश्व को धारण करती है। वह शिव से विपर्यय स्वभाव वाली त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति माया, जिस से यह जगत् व्याप्त है, तीन प्रकार की है। व्यवहार से एक प्रकार की, दो प्रकार की, सैंकड़ों हजारों प्रकार की, बहुत प्रकार की शक्तियां भिन्न २ हैं। शिव की इच्छा से पराशक्ति शिव तत्व के साथ एकमेक हो जाती है और फिर जैसे तिलों में से तेल निकलता है, इसी प्रकार सर्गके आदि में फुरती है। पीछे क्रिया नाम की शक्ति से शक्ति में शक्तिमान् के उत्थान से क्षोभ होता है और आदि में नाद उत्पन्न होता है। नाद से बिन्दु निकलता है और बिन्दु से सदाशिव निकलते हैं। सदाशिव से महेश्वर उत्पन्न होते हैं और महेश्वर से शुद्धा विद्या उत्पन्न होती है। वाणी में वह शिव की इश्वरी शक्ति वागीश्वरी कहलाती है, जो वर्ण स्वरूप से फैली हुई है।

पश्चात् अनन्त के समावेश से माया ने काल को उत्पन्न किया। काल से नियति, कला और विद्या को और कला से राग और पुरुष को उत्पन्न किया। माया से फिर त्रिगुणात्मक अव्यक्त हुआ, तीनों अव्यक्त गुणों से तीनों गुण विभक्त यानी भिन्न २ हुये, सत्त्व, रज और तम तीन गुण हैं, इसी से सब जगत् व्याप्त है। गुणों में क्षोभ होने से गुणेश नाम की तीन मूर्तियाँ हुईं, गुणेशों से यथा-क्रम महदादि तत्व हुये, उन तत्त्वों से शिव की आज्ञासे असंख्य अण्ड और पिंड हुये, जो अनन्तादि चक्रवर्ती विद्या के ईश्वरों से अधिष्ठित हैं। शरीर में भेद होने से शक्ति का भेद कहा जाता है। स्थूल सूक्ष्म भेद से शक्ति अनेक प्रकार की है, रुद्र की शक्ति रौद्री, विष्णु की शक्ति वैष्णवी, ब्रह्मा की ब्रह्माणी और इन्द्र की शक्ति ऐन्द्री कहलाती है। बहुत कहने से क्या है, जैसे अन्तरात्मा से देह व्याप्त है, इसी प्रकार जिस को विश्व कहते हैं, वह शक्ति रूप से व्याप्त है, इस लिये चराचर सब जगत् शक्तिमय है। कला वाली होने से परमा शक्ति पर-मात्मा की कहलाती है, यह परा शक्ति ईश्वर की इच्छानुसार चलने वाली है, यह परा शक्ति अपनी ज्ञान, क्रिया और इच्छा रूप तीन शक्तियों से इस चराचर विश्व को रचती है। यह बात निश्चित है, शक्तिमान ईश्वर सदा विश्व को व्याप्त करके स्थित है, 'यह ऐसा है' 'यह ऐसा नहीं है' यह भेद शक्ति का है। महेश्वर की इच्छा शक्ति नित्य है और कार्य की नियामक है और ज्ञान शक्ति इच्छा शक्ति

का कार्य, कारण और करण है। ज्ञान रूप शक्ति तत्व द्वारा इच्छित प्रयोजन का निश्चय करती है, निश्चित जगत् का क्रिया शक्ति निश्चय करती है संकल्प रूपिणी इच्छा शक्ति क्षण मात्र में संपूर्ण कार्य की कल्पना करती है। तीनों शक्तियों के अनुसार उत्थान है प्रसव धर्म वाली परमा शक्ति के अनुसार वे संपूर्ण जगत् को उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार शक्ति के संयोग से शिव शक्तिमान् कहलाते हैं।

शक्ति और शक्तिमान् से उत्पन्न हुआ यह शाक्त और शैव जगत् है। जैसे पिता माता बिना पुत्र उत्पन्न नहीं होता इसी प्रकार भव और भवानी के बिना यह चराचर जगत् उत्पन्न नहीं होता। स्त्री पुरुष से उत्पन्न हुआ विश्व स्त्री पुरुष रूप ही है। स्त्री और पुरुष की विभूति स्त्री पुरुष दोनों से अधिष्ठित है। परमात्मा शिव कहलाता है और शक्ति शिवा कहलाती है। शिव सदा शिव कहलाते हैं और शिवा मनोन्मी कहलाती हैं। शिव को महेश्वर जानना चाहिये, शिवा माया कहलाती हैं। पुरुष परमेशान है, प्रकृति परमेश्वरी है। रुद्र महेश्वर है और रुद्राणी रुद्र वल्लभा है, विष्णु विश्वेश्वर देव हैं और लक्ष्मी विश्वेश्वर की प्रिया है। ब्राह्म ब्रह्मशिरोहर्ता है और ब्रह्माणी ब्रह्मा की प्रिया है। भगवान् शंभु भास्कर हैं और भगवती शिवा प्रभा हैं। मन्मथारति महेन्द्र है और हिमाचल की कन्या शची है, महादेव जातवेद अग्नि हैं और शर्व्वार्द्धदेहिनी पार्वती स्वाहा हैं। त्र्यम्बक देव यम हैं और गिरिजा यमप्रिया है। भगवान् ईश निर्ऋति है और नगनन्दनी भी निर्ऋति है। भगवान् रुद्र और गिरिवरात्मजा वरुण है बालेन्दुशेखर और शिव मनोहरा शिवा वायु हैं, यक्ष शिरोहर्ता यक्ष हैं और हिमगिरि कन्या ऋद्धि है। चन्द्र चन्द्रार्द्ध शेखर है और रोहणी रुद्रदुहिता है। परमेशान ईशान है और परमेश्वरी ईशान की प्रिया है। अनन्त बल अनन्त हैं और अनन्ता अनन्त वल्लभा है। कालाग्नि रुद्र कालारि हैं और काली कालान्तक की प्रिया है। शंभु पुरुष नाम के मनु हैं और शिव प्रिया शतरूपा है। महादेव साक्षात् दक्ष है और परमेश्वरी प्रसूति है। रुचि भव हैं और आकूति को पण्डित भवानी कहते हैं। भृगु भगाक्षहा देव हैं और ख्याति त्रिनयन की प्रिया है। मरीचि भगवान् रुद्र हैं और संभूति शर्ववल्लभा है। अङ्गिरा को गंगाधर जानना चाहिये और स्मृति को साक्षात् उमा समझना चाहिये, पुलस्त्य शशभृन्मौलि शिव हैं और प्रीति पिनाकी की कान्ता है। पुलह त्रिपुरध्वंसी शिव है और पुलह प्रिया शिव प्रिया है। क्रतु क्रतुध्वंसी शिव कहलाते हैं और सन्नति शिव प्रिया है। अत्रि त्रिनेत्र कहलाते हैं और अनुसूया साक्षात् उमा कहलाती है। कश्यप कालहा देव हैं और देव माता महेश्वरी है, वशिष्ठ मन्मथारति हैं, और अरुंधती साक्षात् देवी है, सब पुरुष शंकर हैं और सब स्त्रियाँ महेश्वरी हैं इसलिये सब स्त्री पुरुष उनकी विभूतिहैं।

विषयी भगवान् ईश है और विषय परमेश्वरी है, सब श्राव्य उमा रूप हैं और श्रोता शूल नरायुध शिव हैं। स्प्रष्टव्य वस्तु समूह को शंकर वल्लभा धारण करती है और स्प्रष्टा वे ही विश्वात्मा बाल चन्द्रावतंसक हैं। द्रष्टव्य वस्तु समूह को भव वल्लभा धारण करती हैं और द्रष्टा शशिखंड शिखामणि विश्वेश्वर देव हैं। रस समूह महादेवी है, देव शिव रसयिता हैं। प्रिय समूह गिरिजा है और

प्रीति गराशन विष खाने वाले हैं, भंतव्य वस्तुओं को महादेवी महेश्वरी धारण करती है और भंता वे ही विश्वात्मा महादेव महेश्वर हैं, भारी वस्तुओं को भव वल्लभा धारण करती है और उठाने वाले वे ही भगवान् मुग्धेन्दुशेखर देव हैं। भगवान् पिनाकी प्रभु सब प्राणियों के प्राण हैं और सब के प्राणों की स्थिति अपान रूपिणी अम्बिका है। क्षेत्रज्ञ को त्रिपुरान्तक वल्लभा देवी धारण करती है और क्षेत्रज्ञत्व को भगवान् अनन्तान्तक धारण करते हैं। दिन शूलायुध देव हैं और रात्रि शूलपाणि प्रिया है। आकाश शंकर देव हैं और पृथिवी शंकरप्रिया है, समुद्र भगवान् ईश हैं और लहर शैलेन्द्र कन्दका हैं। वृक्ष वृषध्वज देव हैं और लता विश्वेश्वर प्रिया हैं। भगवान् पुरुशासन संपूर्ण पुल्लिंग धारण करते हैं और देवी मनोरमा देवी संपूर्ण स्त्रीलिंग धारण करती हैं, शर्ववल्लभा संपूर्ण शब्द जाल को धारण करती है और मुग्धेन्दुशेखर संपूर्ण अर्थ को धारण करते हैं।

जिस २ पदार्थ की जो २ शक्ति है, वह २ शक्ति विश्वेश्वरी है और वह २ पदार्थ महेश्वर है जो परम है, जो पवित्र है, जो पुण्य है और जो २ मंगल है, वह २ उन दोनों महाभागों के तेज से युक्त है। जैसे दीप्त दीपकी शिखा घर को प्रकाशित करती है, इसी प्रकार उन दोनों का यह तेज जगत् को प्रकाशित करता है, तृण से लेकर शिव मूर्ति पर्यन्त विश्व का अतिशय कम इन दोनों के सन्निकर्ष-समीपता के कारण से है, यह पराप्रकृति है, ये दोनों सर्व के आकार वाले हैं, सर्व का श्रेय करने वाले हैं पूजनीय हैं, नमस्कार करने योग्य हैं और सर्वदा चिन्तनीय हैं। हे कृष्ण! अपनी बुद्धि अनुसार मैंने तुम से आज परमेश्वरी का स्वरूप कहा है, वह इतना ही हो ऐसा नहीं है परमेश्वर का स्वरूप इयत्ता से कहा नहीं जासका क्योंकि महान् पुरुषों के भी वह मन से बाहर है। ईश्वर में चित्त लगाने वाले अनन्य भक्तों के चित्त के भीतर ईश्वर का स्वरूप है और दूसरों की बुद्धि में आरूढ़ हो अथवा न हो, जैसा है वैसा ही वह है। यह विभूति जो प्राकृति कही है, यह अपरा मानी जाती है और दूसरी परा, अप्राकृति गुह्य है, इस को गुह्यवित् दरवदर्शी जानते हैं।

जिससे मन और इन्द्रियों सहित वाणी लौट आती है अर्थात् जिस में शब्द नहीं पहुंचता, मन जिस का चिंतवन नहीं कर सकता और जो किसी इन्द्रिय से जानी नहीं जा सकती, वह यह परमेश्वर की परा अप्राकृति विभूति है। वह ही यहां मनुष्य शरीर में परम धाम है, वह ही यहां परमा गति है, वह ही यहाँ परमा काष्ठा-सीमा परमेष्ठी ईश्वर की विभूति है। यहां पर श्वास और इन्द्रियों को जीतने वाले उसकी प्राप्ति के लिये यत्न करते हैं कि जिस से गर्भ रूपी कारागृह का द्वार निश्छिद्र हो जाता है यानी फिर गर्भ में नहीं आना पड़ता। संसार को खाने वाली, विष उतारने वाली, मृत-संजीवनी ओषध शिव की विभूति को जानने वाला किसी से भय नहीं मानता।

जो अधिकारी परा और अपरा दोनों विभूतियों को तत्त्व से जानता है, वह अपरा विभूति को उलाँघ कर परा विभूति को प्राप्त होता है। हे कृष्ण! मैंने तुम से परमात्मा का तत्त्व कहा क्योंकि तुम शिव के भक्त हो और इस रहस्य के जानने के अधिकारी हो। यह तत्त्व अशिष्यों, से शठों से,

अभक्तों से कभी न कहना चाहिये, यह वेद का अनुशासन है। इसलिये तुम भी यदि श्रेयाभिलाषियों से कहो, तो ऐसे ही अधिकारियों से कहना, नहीं तो मत कहना। शिव की इन विभूतियों को जो योग्य पुरुषों को बताता है, वह संसार सागर से मुक्त होकर शिव सायुज्य को प्राप्त होता है। इस के कीर्तन करने से महान् पातक नष्ट होजाते हैं और तीन चार बार के अभ्यास करने से और भी अधिक नष्ट होते हैं। अरिष्ट शत्रु नष्ट होते हैं और सुहृद बढ़ते हैं, श्री तथा विद्या वृद्धि को प्राप्त होती है और सत्य में बुद्धि प्रवृत्त होती है। परिच्छद, अनुचर और अम्बा सहित जो शिव की परा भक्ति करता है, उसको जो २ इष्ट तत्व होता है, वह २ और अन्य भी प्राप्त होता है, इस में संशय नहीं है, यदि पूर्व के प्रबल पाप कर्मों से फल रुक भी जावे, तो बारंबार अभ्यास करे, शिव तत्व का कीर्तन करने वाले भक्त के लिये यहां कुछ भी दुर्लभ नहीं है किन्तु सब कुछ सुलभ है।

पाठक! यदि आप शिव उपासक हैं, तब तो कुछ कहना ही नहीं है। यदि आप विष्णु उपासक अथवा अन्य उपासक हैं, तो इसको पढ़कर चौंकिये नहीं, शिव और विष्णु में भेद नहीं है, जो शिव हैं, वे ही विष्णु हैं और जो विष्णु हैं, वे ही शिव हैं, नाम मात्र का भेद है। देव एक है अपने भक्तों की भावनानुसार एक ही देव बहु रूप होकर भासता है, यह बात ऊपर दिखलाई है, एक ही देव कहीं उपासक हो जाता है, कहीं उपास्य बन जाता है, स्वरूप से देव उपास्य ही हैं, लीला प्रकरण में उपासक बन जाता है। जो रामायण का राम है, वह ही भागवत् का कृष्ण है, वह ही शिव पुराण का शिव है, वह ही गणेश पुराण में विघ्नेश है, वह ही सौर पुराण में सूर्य है और वह ही देवी भागवत् में देवी है। एक ही देव अनेक रूप है, कुछ काल सत्संग करने से यह भेद खुल जाता है, भेद माया में है अथवा बुद्धि में है, तत्व में भेद नहीं है, इसलिये चाहे जिस देव को इष्ट देव मान कर उपासना हो सकती है। फल सबका अन्त में एक ही है, इसलिये कहा है।

कुं०—हरिहर दोनों एक है, नहीं रंचक भी भेद।
नाम मात्र ही भेद है, तत्व एक निर्भेद॥
तत्व एक निर्भेद, भेद दिखलाती माया।
माया है निस्तत्व, तत्व सबका निर्माया॥
भोला! तजदे भेद, कृष्ण भज अथवा शंकर।
नहि विशेष है लेश, एक है दोनों हरिहर॥

मनो-निग्रह

छठे अंक से आगे।

[ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी]

सत्व गुण प्रधान होने से इन्द्रियों में शिथिलता तथा बुद्धि अन्तर्मुख हो जाती है। उस अवस्था में मनुष्य के चित्त की वृत्तियां संसार की वस्तुओं में अनुलिप्त नहीं होतीं, अपितु नित्य आनंद स्वरूप शुद्ध ब्रह्म की उपासना ध्यान आदि में पूर्ण उत्साह वाली होती हैं। जिस समय मन की ऐसी विक्षेप रहित दशा होजाती है उस समय निर्विक्षेप, अधिकारी, अचल चित्त शुद्ध ब्रह्म की खोज वाला

होता है। जैसे समुद्र जब स्थिर रहता है तब उसे ब्रह्म कहते हैं। मन की ऐसी अवस्था ही ब्रह्म की द्योतक है। 'अस्तीति सत्, सतो भावं सत्त्वम्।' अर्थात् वास्तव में जो पदार्थ है उसे सत् कहते हैं। जैसे-शुद्ध ब्रह्म, और जो वास्तव में है ही नहीं उसे असत् कहते हैं। जैसेः-गन्धर्व नगर, आकाश नीलत्वादि, रज्जु में सर्प, मरीचिका में जल, ऐसे ही शुद्ध ब्रह्म में जगत्। जो पदार्थ वास्तविक है, जिस के होने में विचिकित्सा लेशावकाश भी नहीं है, उस का जो भाव यानी स्थिति उसे सत्त्व कहते हैं। इस सत्त्व की स्थिति के लिये ही योगीजन यतन करते हैं। सत्त्वावस्था का लक्षण गीतामें इस प्रकार है।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद् विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥

इस देह में जब मन इन्द्रियादि सारे द्वारों में प्रकाश (ज्ञान किंवा आनन्द) उत्पन्न होता है तब सत्त्व गुण को बढ़ा हुआ जानना चाहिये। ऐसा भगवान् का वचन है। एवं रजोगुणी व तमोगुणी अवस्था की भी निम्न स्थिति है।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥

हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! रजोगुण के बढ़ने पर लोभ, प्रवृत्ति, कर्मों का आरम्भ, अशान्ति और इच्छा, ये सब उत्पन्न होते हैं।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोहमेव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥

हे कुरुनन्दन! तमोगुण के बढ़ने पर असुख (दुःख) अज्ञान, अनुद्यम, प्रमाद और मोह ये सब उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त तीनों गुणोंसे सम्पूर्ण विश्व विराजमान है। प्रायः सभी प्राणी तमोगुण व रजोगुण की अवस्था में जीवन व्यतीत करते हैं। सतोगुण की अवस्था बहुत दुर्लभ है। जो प्राणी इन दोनों (रजोगुण व तमोगुण) की अवस्था का अतिक्रमण करके तृतीय सतोगुण में वर्तता है वह ही आप्त काम है। माया, जीव, ब्रह्म तीन पदार्थ हैं। माया तामस है, जीव राजस है, ब्रह्म सात्विक है। उक्त श्लोक में सतोगुण की अवस्था का प्रकाशवान् लक्षण किया है। प्रकाश का तात्पर्य ज्ञान वा आनन्द से है। ज्ञान ही को ब्रह्म कहते हैं यथाः- 'प्रज्ञानं ब्रह्म'। आनन्द भी ब्रह्मही है। यथाः-

आनन्दो ब्रह्म, आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जातानि, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दमभिसंविशन्ति।

सम्पूर्ण प्राणी आनन्द से ही उत्पन्न होते हैं, आनन्द से उत्पन्न हुये ही जीते हैं, आनन्द में ही लय होते हैं। सत्त्वावस्था आनन्द वाली होने से ब्रह्म ही है। ब्रह्म की प्राप्ति होना सत्त्व में स्थित होना है। तमोगुण सब प्राणियों को मोह में डालने वाला, अज्ञान से उत्पन्न होता है और प्रमाद, आलस्य, निद्रा से जीवों को बन्धन करता है। रजोगुण राग रूप है तथा तृष्णा के संग से उत्पन्न होने वाला कर्म के संग से जीवों को बन्धन करता है। सतोगुण निर्मलता के कारण प्रकाशक और निरुपद्रवी होने से जीव को सुख और ज्ञान से बन्धन करता है। सत्त्व की स्थिति में प्राणी का वियोग होने से जीव उत्तम लोकों को प्राप्त होता है इस सत्त्व की स्थिति के लिये सब से मुख्य उपाय मन का निरोध है क्योंकि जब तक मन को सब ओर से रोक कर भगवान् के भजन में न लगावें जबतक यह अवस्था प्राप्त करना असंभव

है। भगवान गीता के बारहवें अध्याय में कहते हैं।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ।

जो सम्पूर्ण कर्मों के फल मेरे ऊपर छोड़ कर मेरे परायण हुये अनन्य योग से मेरा ध्यान व उपासना करते हैं, हे पार्थ! मुझ में लगाया है चित्त जिन्हों ने उन का मैं मृत्यु संसार सागर से शीघ्र ही उद्धार करने वाला हूं। आगे भी स्पष्ट कहा है।

'मय्येव मन आधत्स्व' इस से यह स्पष्ट ही है कि मन का सब ओर से आकर्षण करके भगवान् में लगाना ही मनो निरोध है। यह मन जहां लग जायगा वैसा ही बन जायगा क्योंकि इस का वास्तविक कोई रूप नहीं होता अपितु सहचारी धर्म का अंशी होता है। जिस पदार्थ के साथ इसका सम्बन्ध होता है वैसा ही आकार धारण कर लेता है।

सति सक्तं नरो याति सद्भावं ह्येक निष्ठया ।
कीटको भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते ॥

जैसे कीट प्रथम कीट ही होता है परन्तु फिर भ्रमरी के ध्यान से भ्रमरी बन जाता है। इसी प्रकार मनुष्य जैसे भावों से सम्बन्ध रखता है वैसा ही बन जाता है। महात्मा सुन्दरदास जी ने क्या ही उत्तम कहा है:-

जो मन नारि की ओर निहारत, तो मन होत है नारि को रूपा।
जो मन काहु से क्रोध करे, तब क्रोधमय होजाय तद्रूपा ॥
जो मन माया ही माया रटे नित, तो मन डूबत माया के कूपा
सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत, तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा ॥

इसलिये आत्मोन्नति चाहने वालों को अपने मनको सब ओर से हटाकर ब्रह्म भाव में लगाना चाहिये, क्योंकि विषयों से करे विरोध, इन्द्रियों को ले शोध, कभी ना करे क्रोध, निज लक्ष्य के सिवा मनका सर्वतः करे प्रतिरोध, यही है मनोनिरोध, इसी से होता है आत्मबोध, बिना इसके हैं सभी अबोध।

भजन

नमो नमो जय श्रीगोविंद ।
आनँदमय ब्रज सरस सरोवर,
प्रगटित विमल नील अरविंद ॥ १ ॥
जसुमति नीर नेह नित पोषित,
नव-नव ललित लाड़ सुखकंद ।
ब्रजपति तरनि प्रताप प्रफुल्लित,
प्रसरित सुजस सुवास अमन्द ॥ २ ॥
सहचरि जाल मराल संग रँग,
रसभरि नित खेलत सानन्द,
अलि गोपीजन नैन गदाधर,
सादर पिवत रूप मकरन्द ॥ ३ ॥

२

हरि हरि हरि हरि रट रसना मम ।
पीवति खाति रहति निधरक भई,
होत कहा तोकों श्रम ॥ १ ॥
तैं तो सुनी कथा नहिं मोसे,
उधरे अमित महाधम ।
ग्यान ध्यान जप तप तीरथ व्रत,
जोग जाग बिनु संजम ॥ २ ॥

हेम हरन द्विज द्रोह मान मद,
अरु पर गुरु दारागम ।
नाम प्रताप प्रबल पावकके,
होत जात सलभा सम ॥ ३ ॥
इहि कलिकाल कराल व्याल विष,
ज्वाल विषम भये हम ।
बिनु इहि मंत्र गदाधरके क्यों,
मिटि है मोह महातम ॥ ४ ॥

३

है हरितें हरिनाम बड़ेरो ।
ताकों मूढ़ करत कत झेरो ॥ १ ॥
प्रकट दरस मुचकुन्दहिं दीन्हों,
ताहू आयुसु भो तप केरो ॥ २ ॥
सुत हित नाम अजामिल लीनों,
या भवमें न कियो फिरि फेरो ॥ ३ ॥
पर अपवाद स्वाद जिय राच्यौ,
वृथा करत बकवाद घनेरो ॥ ४ ॥
कौन दसा ह्वैहै जु गदाधर,
हरि हरि कहत जात कहा तेरो ॥ ५ ॥

४

राम कृष्ण कहिये उठि भोर ।
अवधईस वे धनुष धरे हैं,
यह ब्रज-माखन-चोर ॥ १ ॥
उनके छत्र चँवर सिंहासन,
भरत सत्रुहन लछमन जोर ।
इनके लकुट मुकुट पीताम्बर,
नित गायन-संग नन्द-किसोर ॥२॥
उन सागर में सिला तराई,
इन राख्यो गिरि नखकी कोर ।
'नन्ददास' प्रभु सब तजि भजिये,
जैसे निरखत चंद चकोर ॥ ३ ॥

५

जसौदा तेरे भाग्यकी कही न जाय ।
जो मूर्ति ब्रह्मादिक दुर्लभ सो प्रगटे हैं आय ॥ १ ॥
शिव नारद सनकादि महामुनि मिलिवे करत उपाय ।
ते नंदलाल धूर धूसर-वपु रहत गोद लिपटाय ॥ २ ॥
रतन जड़ित पोढ़ाय पालने बदन देखि मुसकाइ ।
भूलौं मेरे लाल बलिहारी परमानंद जस गाइ ॥ ३ ॥

६

मेरी माई माधो सौं मन लाग्यौ ।
मेरी नैन और कमलनैन कौ
इक ठौरो करि मान्यौ ॥ १ ॥
लोक वेदकी कानि तजी मैं
न्यौती अपने आन्यौ ।
एक गोविंद चरण के कारण
वैर सबन सौं ठान्यौ ॥ २ ॥
अब कोभिन्न होय मेरी सजनी !
दूध मिल्यौ जैसे पान्यौ ।
परमानन्द मिली गिरधर सौं
है पहली पहचान्यौ ॥ ३ ॥

७

जब ते स्याम सरन हौं पायो ।
तब तें भेंट भई श्रीवल्लभ,
निज पति नाम बतायो ॥ १ ॥
और अविद्या छांड़ि मलिन मति,
स्रुति पथ आय दृढ़ायो ।
कृष्णदास जन चहुं जुग खोजत,
अब निहचै मन आयो ॥ २ ॥